RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 06 प्रकाशन तिथि : 25 मई कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जून 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

हिन्दूपति परताप पत राखी हिन्दवाण री।
सहै विपत संताप सत्य सपथ कर आपणी।।

सोयो सह संसार असुर पलो ले ऊपरै।
जागै जगदातार पोहरे राण प्रतापसी।।

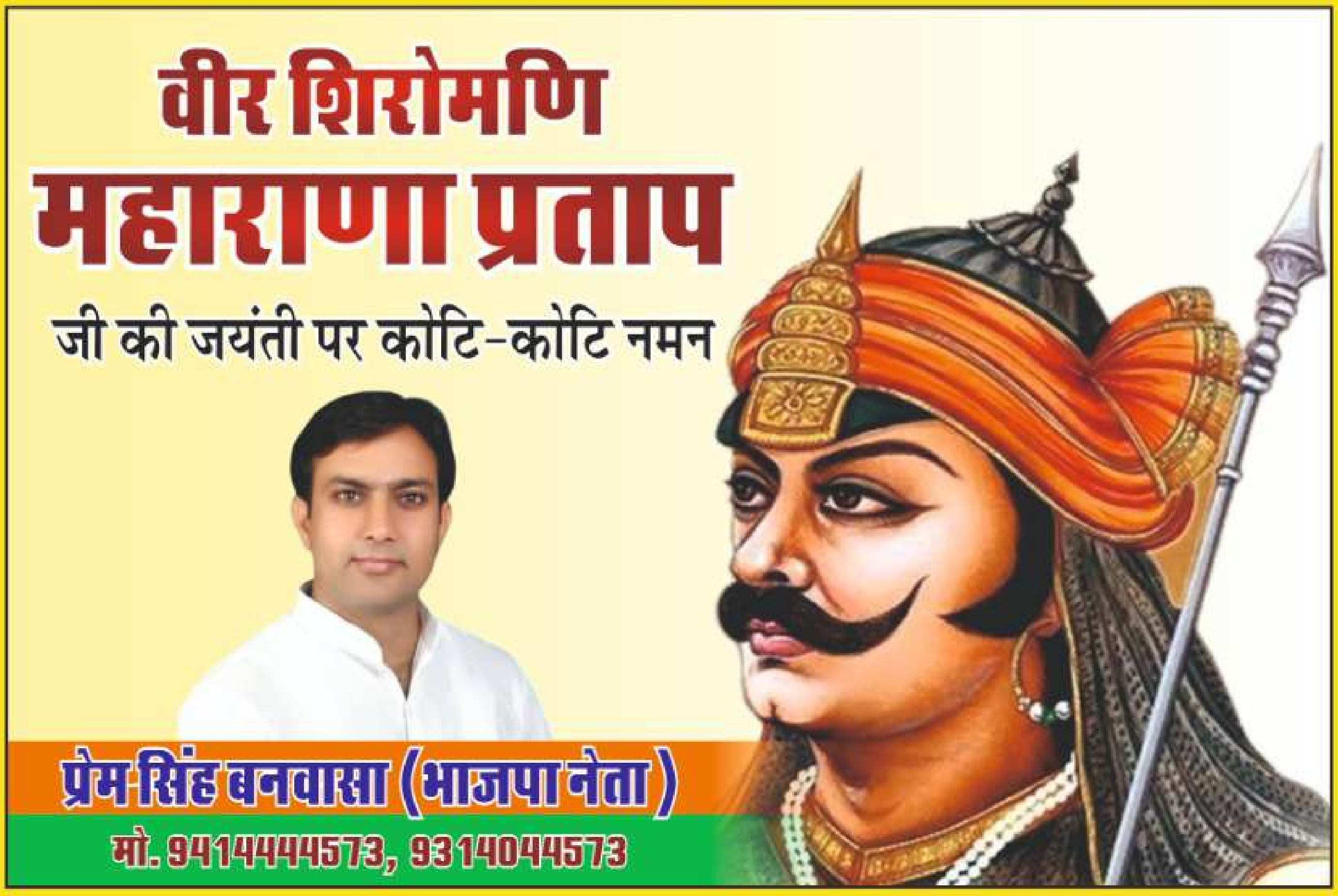

श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ

श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ
स्थापना :- २१/०४/१९९०

-: श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ के कार्य :-

- साइकल स्कीम
- 700 सभ्य की बचत स्कीम
- व्यसन मुक्ति
- कुरिवाज का त्याग
- अंध श्रद्धा को दूर करना
- प्राथमिक कक्षा के बालकों के लिए हर साल फ्री में नोटबुक और जरूरी सामग्री देना
- इनाम वितरण
- दशहरा महोत्सव
- महाराणा प्रताप जयंती महोत्सव
- गांव की प्राथमिक स्कूल में कंप्यूटर लेब निशुल्क बालकों के लिए

देवेंद्रसिंह, घनश्यामसिंह
अध्यक्ष

सिद्धराजसिंह, अनिरुद्धसिंह
उपाध्यक्ष

हशपालसिंह, जयदीपसिंह
उपाध्यक्ष

यशराजसिंह, तजवितसिंह
मंत्री

हिरेन्द्रसिंह जटुभा
संगठन मंत्री

मित्राजसिंह, नवलसिंह
संगठन मंत्री

महावीरसिंह, महेंद्रसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण - समन्वयक

भगीरथसिंह, किशोरसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण - समन्वयक

रामदेवसिंह नारुभा
महाराणा प्रताप वर्षगांठ - समन्वयक

शक्तिसिंह, राजेन्द्रसिंह
महाराणा प्रताप जयंती - सह संयोजक

सिद्धराजसिंह, जयेंद्र सिंह
दशहरा महोत्सव समन्वयक

युवराजसिंह, महेंद्रसिंह
दशहरा पर्व - सह संयोजक

संघशक्ति

4 जून, 2022

वर्ष : 58 अंक : 06

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	06
मनुष्य की वास्तविक उन्नति किसमें?	स्वामी रामसुखदास जी	10
पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	12
छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	स्वामी श्री जगदात्मानन्द	14
विचार सरिता (एक सप्तति: लहरी)	विचारक	19
यदुवंशी करौली का इतिहास	राव शिवराजपाल सिंह इनायती	20
महाराणा प्रताप महान	श्री मोहनसिंह बम्बोरा	22
दो शब्द क्षत्रिय युवक-युवतियों के लिये	श्री गोविन्दसिंह कसनाऊ	25
शौर्य दिवस	कुँ. प्रतापसिंह तलावदा	27
महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा	श्री भँवरसिंह मांडासी	30
कलयुगी जीवन	श्रीमती अंजना कुड़ी	32
अठे पधारो आप	श्री कमलसिंह सुल्ताना	33
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

शिविर :

श्री क्षत्रिय युवक संघ की साधना का मुख्य आधार है दैनिक मैदानी शाखाएँ तथा प्रशिक्षण शिविर। कोविड प्रतिबंधों के कारण साधना के मुख्य आधार से दूरी बन गई। हालांकि वर्चुअल माध्यम से शाखाएँ लगती थी, विभिन्न कार्यक्रम भी वर्चुअल माध्यम से होते थे परन्तु इनसे कोविड प्रतिबंधों द्वारा पैदा की गई बाधा का निराकरण पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। प्रतिबन्धों में ढील मिलते ही **'हीरक जयन्ती'** की तैयारी उस थोड़े से समय में की गई। अब जयन्ती के बाद हम अपनी साधना के आधार पर लौट आए हैं। शाखाएँ अनेक जगहों पर प्रारम्भ हो चुकी हैं। वर्चुअल माध्यम से भी चल रही हैं। जयन्ती के तुरन्त बाद देवीकोट (जैसलमेर) में एक माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर, आसपुर (डूंगरपुर) में एक बालिकाओं का प्राथमिक शिविर और फरवरी माह में आलोक आश्रम बाड़मेर में एक दंपती शिविर हो चुके हैं जिनका समाचार पहले भी दिया जा चुका है।

गुजरात में, बूटाटी (नागौर) में, नाथद्वारा (राजसमन्द) में, बंगलोर में, रायधना (नागौर) में प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हो चुके हैं। नाल (बीकानेर) और बाढ मोचिंगपुरा (दौसा) में माध्यमिक शिविर भी सम्पन्न हो चुके हैं। समाचार लिखे जाने तक, अनेक प्रतिबंधों के उपरान्त भी उच्च प्रशिक्षण शिविर, आलोक आश्रम बाड़मेर में आने वाले शिविरार्थियों की संभाग प्रमुखों द्वारा भेजी गई सूची बहुत लम्बी है। दो वर्ष बाद जो अवसर मिल रहा है।

चिंतन शिविर :

श्री प्रताप फाउण्डेशन का एक दो दिवसीय चिन्तन शिविर 23 व 24 अप्रेल को जयपुर में सम्पन्न हुआ। इस बैठक में श्री प्रताप फाउण्डेशन की कार्य योजना व आगामी एक वर्ष के लिए करणीय कार्यों की चर्चा हुई। श्री प्रताप फाउण्डेशन की कार्ययोजना को आम राजपूत तक पहुँचाने के लिये बैठकें व यात्रा करने का निर्णय लिया गया। अन्य समाजों के साथ स्थानीय स्तर पर बैठकें आयोजित करने का निश्चय किया गया। राजनैतिक कार्यकर्ताओं की वरिष्ठ राजनीतिज्ञों की उपस्थिति में राज्य स्तरीय कार्यशाला का आयोजन करने का भी निर्णय हुआ। विधानसभा-वार राजपूत मतदाताओं के आंकड़े जुटाने का कार्य करने का भी निश्चय हुआ।

इस चिन्तन शिविर में राजस्थान के 25 जिलों में से राजनैतिक कार्यकर्ता उपस्थिति हुए। प्रारम्भ में श्री प्रताप फाउण्डेशन की स्थापना और अब तक की यात्रा की जानकारी दी गई। माननीय संरक्षक श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर तथा संघप्रमुखश्री लक्ष्मणसिंहजी का भी सान्निध्य शिविरार्थियों को मिला। 23 अप्रेल को विधानसभा में उपनेता प्रतिपक्ष श्री राजेन्द्रसिंह राठौड़ और 24 अप्रेल को पर्यटन निगम के अध्यक्ष श्री धर्मेन्द्रसिंह राठौड़ भी शिविरार्थियों से मिलने पहुँचे।

अन्य समाचार :

27 अप्रेल को 'संघशक्ति' प्रांगण में माननीय संरक्षक श्री भगवानसिंहजी के सान्निध्य में स्वयंसेवकों का स्नेह मिलन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। 25 अप्रेल को संरक्षक श्री कुचामन स्थित कार्यालय आयुवान निकेतन में स्वयंसेवकों से मिले। 26 अप्रेल को नागौर में और बीकानेर में मिलन रखा। 27 अप्रेल को बेलासर में कार्यक्रम रखा गया। बीकानेर से जोधपुर और फिर बाड़मेर पहुँचे। जयपुर में 16 अप्रेल को कांग्रेस के राष्ट्रीय नेता दिग्विजयसिंह से संघ व समाज के विषय में संवाद हुआ।

आर्थिक पिछड़ा वर्ग (EWS) के प्रमाण पत्र बनाने के लिये प्रतिवर्ष प्रयास करते रहने के सम्बन्ध में प्रताप फाउण्डेशन ने मुख्यमंत्री को पूरी दुविधा प्रकट की थी। उसी के तहत अब यह प्रमाण पत्र एफेडेविट देने से तीन वर्ष तक मान्य होगा यह आदेश सरकार ने निकाल दिया है।

8 मई को महाराणा प्रताप की जयन्ती के उपलक्ष में दिल्ली में दो स्नेह मिलन कार्यक्रम सम्पन्न हुए जिनमें अनेक प्रबुद्ध जन सम्मिलित हुए। एक शिविर भी तय हुआ।

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति भवन में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 16.12.2007 को दिया गया उद्‌बोधन}

अब शिविरों की संख्या बढ रही है। अधिक शिविर होने से अधिक स्वयंसेवक सम्पर्क में आ रहे हैं। अधिक शिविरों का अवसर मिलने से अनेक लोग एक ही वर्ष में कई शिविर कर लेते हैं। ऐसे लोगों को जिम्मेवार मानें तो उनकी संख्या भी बढ रही है। अनुकूल परिस्थितियाँ होने से आशा तो यह की जाती है कि अब शाखाओं की संख्या भी बढेगी। परन्तु शाखाओं की संख्या में बढोत्तरी आशाजनक नहीं रही है। संघ के वरिष्ठ स्वयंसेवक भी सभी जगह इतनी सक्रियता से नजर नहीं आ रहे। अत: उच्च प्रशिक्षण शिविर में यह कहा गया था कि संघशक्ति प्रांगण जयपुर में विशेष शिविर आयोजित किए जाएँगे। यह भी कहा गया था कि प्रत्येक स्वयंसेवक को कम से कम एक विशेष शिविर अवश्य करना चाहिए।

घरेलू परिस्थिति अथवा शारीरिक परिस्थिति के कारण जिम्मेवारी निभाने में कमी आई हो या जिम्मेवारी निभाने की आवश्यकता ही महसूस न की जा रही हो। जो भी कारण हो अपेक्षित सक्रियता में कमी नजर आ रही है। हम अपने आपको सक्रिय बनाए रखें, इसके लिए कुछ लक्ष्य दिए गये थे। इनके सम्बन्ध में त्रैमासिक प्रतिवेदन माँगे गए थे। अपनी दिनचर्या का विवरण मांगा गया था। जिन्होंने अब तक नहीं दिया है, वे अब बताये गये प्रभारी को दे दें।

कुछ कार्यालय बनाकर उनके प्रभारी नियुक्त किए गए थे। कोई भी कार्यालय सहयोगी (प्रभारी) जो कुछ अपने कार्यालय के बारे में कुछ कहता है, संदेश देता है, वह संघप्रमुख के कहने से ही ऐसा कर रहा है। ऐसे अपने मन से नहीं कह रहा है। सहयोगी जो कहता है, उसे संघप्रमुख की ही आज्ञा मानें। हम सब की साधना यात्रा एक जैसी नहीं, क्योंकि हमारे स्तर भी एक जैसे नहीं। हम सबके स्तर समान बनें, इसी के लिये यह प्रयास है। अत: कार्यक्रम में आना ही पर्याप्त नहीं है। अपने आपको जाने बिना हम स्तर की समानता की डगर पर नहीं बढ सकते। जो व्यक्तिगत लक्ष्य दिए गये, उनकी पालना में दिए जाने वाले प्रतिवेदनों में हम अपना चेहरा देख सकते हैं। अपने आपको जाने बिना, कैसे पता चलेगा कि हम संघ की चाह के अनुसार जीवन ढाल रहे हैं या नहीं।

संघ ने तो आपको स्वीकार लिया है, पर आपने संघ को स्वीकारा है या नहीं, यह इन दी गई क्रियाओं से स्पष्ट हो जाएगा। आपके मस्तिष्क में चल रहे विचारों से, आप द्वारा देखे जा रहे सपनों से भी यह जाना जा सकता है कि संघ को आपने स्वीकारा है या नहीं। आपका कौनसा समय है जो आप संघ को और दे सकते हैं। हमारी संघ से घनिष्ठता ही बताएगी कि संघ हमारे में कितना उतरा है।

संघ तो पूछ रहा है कि और क्या है जो आप संघ को दे सकते हो। यह बता दो। पर जो छुपाता है, जो निमित्त नहीं बन सकता, वह संघ का नहीं हो पाएगा। कहा गया है कि सुबह 4 बजे उठना है। इसमें गफलत न हो अन्यथा अन्य निर्देश भी निभा पाने में शंका है। जैसे-जैसे संघ बढ रहा है, विस्तार के साथ स्वयंसेवकों की श्रेणियाँ बन रही हैं। जो अब अलग हो गया है वह भी संघ का है, ऐसा संघ मानता है। सभी लोग पूरे प्रयास के बाद भी एक जैसे नहीं बनाए जा सकते लेकिन इन श्रेणियों की जानकारी मालूम होती रहे तो उनको कार्य में समायोजन करने की योजना बनानी आसान हो जाती है। संघ का और अधिक विस्तार होगा। संघ के लिए बवण्डर व हिचकोले भी आएँगे, पर संघ बढता रहेगा। स्वयंसेवक की धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक जैसी भी रुचि हो, स्पष्ट होने पर उस श्रेणी का उधर ही उपयोग लिया जाए। आप अपने आपको स्पष्ट कर दें तो संघ उसीके अनुसार आपका उपयोग करे।

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

बाड़मेर में पढाई करने के बाद आगे पढने के लिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने जोधपुर के चौपासनी विद्यालय में दाखिला लिया। चौपासनी विद्यालय में साधारण घर के विद्यार्थियों के लिए अलग छात्रावास थे और अमीर घराने के विद्यार्थियों के लिये अलग छात्रावास थे। विद्याध्ययन के दिनों में वे अपने सभी साथी साधारण घर के भाइयों और अमीर घराने के राजपूत भाइयों के जीवन से रूबरू हुए, उनके जीवन और व्यवहार को देखा तो उन्हें समाज की इस हालत पर तरस आने लगा। अपने समाज की मौजूदा हालात व सोच ने उनको व्यथित व पीड़ित कर दिया। समाज की मौजूदा हालात को देख समाज के लिय कुछ कर गुजरने की उनमें छटपटाहट हुई, उनमें समाज के प्रति स्फूरणा जगी। इस स्फूरणा की बदौलत उन्होंने चौपासनी में पढते समय एक छात्र-संगठन भी बनाया।

चौपासनी में हाई स्कूल की पढाई के बाद उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये वे पिलानी गये। वहाँ अपने साथ पढने वालों के अलावा अन्य समाज बन्धुओं के जीवन से रूबरू हुए। समाज की गिरती हालत उन्हें लगातार व्यथित कर रही थी और उन्हें लगातार कचोट भी रही थी कि मैं कुछ करूँ।

पिलानी में राजपूत छात्रावास के कमरा नम्बर 12 में रहते समय 1944 को दीपावली के दिन दीपोत्सव का प्रकाश देखकर इसी कमरे में चिन्तन करने लगे कि क्या यह प्रकाश मेरे समाज में फैले अन्धकार को दूर कर पायेगा? चिंतन के दौरान उनमें यह भाव जगा कि मेरे समाज में भी प्रकाश फैले, मेरे समाज में जो भी अभाव है, उसे दूर किये जाने का भाव भी उनमें जगा। इसी भाव ने श्री क्षत्रिय युवक संघ को जन्म दिया।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''समाज के प्रति व्यथा और पीड़ा ही सफलता का गुरु मंत्र है।'' समाज की गिरती हालत ने ही पूज्य श्री को व्यथित और पीड़ित कर रखा था। समाज के लिए कुछ करने की उनमें पहले से ही कुलबुलाहट थी, छटपटाहट तो थी ही और जब वे पिलानी के बाद कानून की पढाई करने के लिये नागपुर गये, तो वहाँ वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये, उनके कार्य-कलापों और उनकी प्रणाली को देखा। पथ विचलित, धर्मच्युत, कर्तव्य व उत्तरदायित्व से विमुख अपने क्षत्रिय समाज के लिए उन्हें यह कार्य प्रणाली उपयुक्त व अनुकूल लगी और इसी कार्य प्रणाली को श्री क्षत्रिय युवक संघ में अपनाकर समाज जागरण की यात्रा पर निकल पड़े।

पूज्य श्री तनसिंहजी के हृदय में समाज जागरण की चिनगारी प्रज्वलित हो चुकी थी जो अब आग बन चुकी थी। पूज्य श्री ने उस आग से अपने साथियों को भी सुलगाना शुरू किया। पूज्य श्री की व्यथा अब उन सभी साथियों की व्यथा बन चुकी थी। पूज्य श्री तनसिंहजी के हृदय में समाज की व्यथा की जो आग जली उसके सम्बन्ध में पूज्य श्री ने कहा-

''इस आग को जलाने का वर्षों से मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। इसी ने मुझे भिखारी बना दिया और इसी से मैं अपने सहयोगियों को भी जलाता रहता हूँ। जो थोड़ी बहुत राख बनी है, उसी में तुम्हारा कुछ स्वरूप मैंने देखा है और मुझे विश्वास हो गया तुम वही हो, जिसे मैं अब तक चाहता आ रहा हूँ।''

छोटी उम्र में ही पूज्य श्री तनसिंहजी को अहसास हो गया कि संसार (समाज) उनके लिए नहीं है, अपितु वे संसार के लिए हैं, इसलिए समाज की गिरती साख और उनके दुर्दिनों को देख पूज्य श्री व्यथित हो उठे। रसातल में

धंसते समाज को बचाने के लिये वे कृतसंकल्प थे। समाज की दशा और दिशा दोनों का बदलना उनके लिए आवश्यक हो गया था। समाज की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन करके ही उसे इस दयनीय स्थिति से उबारा जा सकता था, इसलिए पूज्य श्री ने श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की। समाज को श्री क्षत्रिय युवक संघ की आवश्यकता क्यों पड़ी, इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने बताया-

''किसी संस्था अथवा संघ की व्यक्ति को इसलिए आवश्यकता होती है कि व्यक्ति वर्तमान को इस प्रकार परिवर्तित करना चाहता है कि जिससे भविष्य का निर्माण हो सके, किन्तु ऐसा करना व्यक्ति की शक्तियों से बाहर हो, तब वह अनेक व्यक्तियों को संघबद्ध कर उनकी सामूहिक शक्ति से लक्ष्य सिद्धि करना चाहता है। भविष्य निर्माण में हमारी सृजनात्मक प्रवृति इतनी प्रबल नहीं होती, जितनी वर्तमान को ध्वस्त करने की आकांक्षा होती है। सच तो यह है कि वर्तमान के प्रति प्रबल आक्रोश ही भविष्य निर्माण की जड़ में कार्य करता है। जब तक वर्तमान को परिवर्तित करने की तीव्र आकांक्षा नहीं होती, तब तक हमें भविष्य निर्माण में रुचि ही नहीं लगती। मानव क्रान्ति की यही आधार-शिला है।''

सामान्य लोग वर्तमान को परिवर्तित करने के बजाए जमाने के साथ में ही चलना बेहतर समझते हैं। जमाने के साथ चलकर उज्ज्वल भविष्य के निर्माण का जो स्वप्न देखते हैं, वह स्वप्न ही बना रहता है। समय की क्या माँग है? समय क्या चाहता है? समय की इस माँग और चाहत को महापुरुष ही पूरा करते हैं। इसलिए जब भी समय का आह्वान होता है तब इस धरा पर महापुरुष अवतरित होते हैं। पूज्य श्री तनसिंहजी ने हमें बताया-

''कुछ लोग समय का बहुत बड़ा रोना रोते हैं। कहते हैं, किसी कार्य विशेष का समय नहीं है। समय की सच्ची माँग आवश्यक नहीं कि जमाने की दिशा के अनुकूल ही हो। एक समय जब हिरण्यकश्यप का राज्य था, उस समय जमाने का प्रवाह यही था कि हिरण्यकश्यप का विरोध नहीं किया जाये, परन्तु समय की माँग उस समय प्रहलाद ने ही पूरी की थी। रावण के समय में जमाना रावण की ओर था पर समय चाहता था कि कोई ऐसा व्यक्ति आये जो इस दुष्ट आततायी का विनाश कर सके। पर उस जमाने में ऐसी क्षमता नहीं थी। जमाना उन आतताइयों के आगे झुक चुका था। उस समय, समय की माँग को पूरा करने के लिए भगवान को अवतार लेना पड़ा। सत्य और समय की माँग सदैव एक हुआ करती है। जो सत्य से पिछड़ जाए वह किसी जमाने की माँग नहीं। अब प्रश्न रहता है जमाने का। जमाना बदलता है, उसे बदलने वाले महापुरुष कहलाते हैं। समय के आगे जमाने को झुकना पड़ता है। सही अर्थों में जमाना एक निर्जीव ठेलागाड़ी है, जो प्रवृतियों द्वारा इधर-उधर खींची जाती है। कभी सतोगुणी प्रवृति बढने लगी तो जमाने का रुख सतोमुखी हो गया और कभी तमोगुणीय चेष्टाएँ बढने लगी तो सारा जमाना तमोभाव की ओर जाने लगता है।

''स्वधर्म पालन करना समय की माँग है, सत्य की माँग है। स्वधर्म पालन करने का अभिप्राय अपने उत्तरदायित्व को निभाना व हमारे गुण और स्वभाव के अनुकूल कर्मों को फलासक्ति रहित होकर करना है। यह किसी देशकाल में बुरा नहीं है। जो लोग धर्म के विषय में हल्ला मचाते हैं, वे धर्म के मर्म को नहीं जानते। धर्म आचरण का मूल है और आचरण के सुधार में ही समाज के सुधार की बुनियाद है। कहीं सुधार का कार्य सहयोगी और सामूहिक आधार पर किया जाए तो इससे भिन्न कोई समाज जागरण मेरी नजरों में नहीं है।

''सामाजिक शक्ति को जागृत करने के समय उसके सामने स्वधर्म पालन से बढकर और कोई शाश्वत लक्ष्य नहीं हो सकता। समाज को अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व के मार्ग पर आरूढ करना, न केवल समाज की सेवा है, बल्कि वह राष्ट्र और समूची मानवता की सेवा है।''

सतोगुणीय भाव रखने वाला क्षत्रिय जब तमोगुण से आक्रान्त होकर पथ विचलित, धर्मच्युत और अपने कर्तव्य

व उत्तरदायित्व से विमुख हो गया। ऐसे समय में क्षत्रिय समाज को अपने स्वधर्म, कर्तव्य व उत्तरदायित्व के मार्ग पर आरूढ करना समय की माँग थी। और समय की इस माँग को पूरा करने के लिए पूज्य श्री तनसिंहजी को आगे आना पड़ा। पूज्य श्री द्वारा स्थापित श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों और शाखाओं में कर्तव्य पालन और उत्तरदायित्वों के बोध की शिक्षा दी जा रही है तथा इनका अभ्यास कराया जाता है, साथ में निष्काम भाव से कर्म करने की शिक्षा दी जा रही है। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी –

''इस लोक के लिए और परलोक के लिये अपने उत्तरदायित्वों को निभाने की शिक्षा से बढकर कोई शिक्षा नहीं है। हमारे गुणों को विकसित करने का अर्थ ही समाज के गुणों को जागृत करना है। हमारी विशिष्टतायें जागृत करना ही सामाजिक विशेषताओं को जागृत करना है। जब सामाजिक विशेषताएँ जागृत होंगी तो समाज की संजीवनी शक्ति फिर प्रवाहित हो उठेगी। ज्यों ही वह क्रियाशील हो उसके सामने स्वधर्म पालन का लक्ष्य हो और देश काल के अनुकूल प्रणाली हो, तो यही समाज जागृति का मार्ग, यही राष्ट्र जागृति का मार्ग है। इन्हीं जागृतियों से भिन्न कोई परमेश्वर की जागृति भी नहीं है। अत: समाज अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार फल आसक्ति रहित होकर कर्म करे, तो इसी से लोक और परलोक दोनों के उद्देश्य सिद्ध होते हैं।''

पूज्य श्री तनसिंहजी का समाज जागरण अन्त:करण का जागरण है। यानी निज का निर्माण। निज को बनाकर ही हम समाज जागरण के लिए उपयुक्त यानी काबिल हो सकते हैं। आजकल समाज जागरण का जो ढर्रा चल रहा है उसके सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी–

''आजकल समाज जागरण की पद्धति बहिर्मुखी है। लोग यह मानते हैं कि किसी प्रदर्शन विशेष में उपस्थिति अच्छी हो जाए, अथवा समाज के लोग एक विशेष प्रकार की वेशभूषा और बोली बोलते हों, तो उनमें जागृति आ ही जाती है। सच तो यह है कि हर सामाजिक क्रान्ति का मूल अन्त:करण में है। विचार क्रान्ति के बिना कोई भी सामाजिक क्रान्ति सम्भव नहीं है। बाहर के परिवर्तन, छुटपुट समाज–सुधार, भीतरी परिवर्तन के अनिवार्य परिणाम हैं, किन्तु बाह्य स्वरूप के परिवर्तन से भीतरी परिवर्तन आ जाए यह आवश्यक नहीं। पिछले पचास वर्षों में हमने समाज को बाह्य स्वरूप में परिवर्तन लाने की जितनी चेष्टा की है, उतनी भीतरी परिवर्तन के लिये नहीं की और परिणाम हमारे सामने हैं। हम जैसे पहले थे उससे कुछ भी आगे नहीं हैं।'' इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

निज को न बनाया तो, जग रंच नहीं बनता।

''अत: हम सब मिलकर आत्म–जागृति की ओर बढें। ऊर्ध्वगति की साधना ही समाज में अथवा राष्ट्र में जागृति ला सकती है। व्यक्ति को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिये उसे सुख–दु:ख और संयोग–वियोग के हर्ष शोकादि को सहन करने का अभ्यास करना पड़ेगा। जिसमें सामान्य लोग सुख की अनुभूति करते हैं, उससे हमें हटना होगा और जिसे लोग कष्ट और दुख कहते हैं, उससे राष्ट्र को जागृत करना होगा। आज लोगों के स्वभाव ऐसे हो रहे हैं कि जंगलों में दो दिन रहना भी जैसे बहुत बड़े पराक्रम का काम हो। दो मील पैदल चलना ही महान परिश्रम हो गया। वे लोग अपनी इच्छाओं के विरुद्ध शारीरिक संयम की महत्ता को भूल गये हैं। इसका कारण यह है कि सांसारिक भोगों में हम इतने लिपायमान हो गये हैं कि श्रेय साधन का संघर्ष हमें अच्छा नहीं लगता। यह साधना यद्यपि कठिन है पर अभ्यास से सरल होकर यही समाज व राष्ट्र को सबल और जागृत करने की लाभदायक प्रणाली हो सकती है।

''हम समाज जागरण के कार्य में अपनी चित्त की वृत्तियों को एकाग्र कर राग द्वेष से परे होकर एकनिष्ठ होकर कार्य करेंगे, तभी हमारे आचरण का प्रभाव समाज पर पड़ेगा। वायु रहित स्थान में स्थित दीपक की लौ जिस

प्रकार निश्चल होती है वैसी ही उपमा योगाभ्यास करने वाले योगी को दी जाती है। समाज कार्य करने वाले व्यक्ति की स्थिति भी इसी प्रकार एकाग्र होनी चाहिये, तभी वह इस सदियों से सोते हुए समाज को जागृत कर सकेगा। यह अनुभव की बात है कि भाषण भानुओं के भाषण का इतना प्रभाव नहीं पड़ता। नेताओं के-क्रान्तिकारी प्रस्तावों का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, उपदेशों की मण्डली के धुंआधार प्रचार का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, कवि की उक्ति और धनुर्धर का बाण इतना प्रभाव नहीं करता, जितना एक ध्येय निष्ठ कार्यकर्ता का राग द्वेष रहित आचरण, प्रभाव किया करता है, क्योंकि शब्द की अपेक्षा क्रिया का अधिक महत्त्व है।''

समाज जागरण में गीता की भूमिका दर्शाते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी -

''गीता का अन्तिम उद्देश्य युग परिवर्तन है। गीता का उद्देश्य युग परिवर्तन के लिए उचित मार्ग-दर्शन व सम्बल देना है। विचार क्रान्ति के बिना कोई भी सामाजिक क्रान्ति सम्भव नहीं है। गीता विचार क्रान्ति का प्रथम सोपान है। वह सार स्वरूप और यथार्थ रहस्य है। इसी रहस्य का उद्घाटन करना ही मानव जागरण का एकमात्र मार्ग हो सकता है। यदि हमें समाज के दृष्टिकोण और उसकी विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना है, यदि हमें कलियुग की सहज संघर्षहीन कायरता से समाज को कर्तव्य के सात्विक मार्ग पर प्रतिष्ठित करना है, तो जन जागरण के निमित्त गीता को मार्ग दर्शिनी बनाना पड़ेगा। गीता समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के उद्देश्य से प्रणीत हुई थी। आज समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिये गीता ही एक मात्र साधन है। गीता का महत्त्वपूर्ण कार्य कलियुग में ही है। जो गीता द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलता है, वह उस ज्ञान का सदुपयोग ही नहीं करता, अपितु भागवत विधान को चरितार्थ करने का ईश्वरीय कार्य करता है। ईश्वरीय कार्य ही ईश्वर को प्रिय है।

''जो व्यक्ति अनादि, शाश्वत और अनन्त सिद्धान्तों का आधार लेकर स्थाई रूप से समाज को जीवनदायिनी प्रेरणा देना चाहता है, उसके लिए गीता ही एक मात्र मार्ग है, जिसमें कलियुग को सतयुग में बदलने की क्रान्ति झलकती है। जिस किसी को मानव समाज में जागृति का शंख बजाना है, जनजीवन को यथार्थ ज्ञान का व्यवहारिक परिचय देना है, उनके लिये गीता ही एक मात्र मार्गदर्शन है। गीता के माध्यम से ही समाज जागरण का सपना साकार हो सकता है। जो गीता के ज्ञान की उपेक्षा कर समाज-जागरण के स्वप्न देखता है, उसके स्वप्न निराधार होने के कारण सदा स्वप्न ही बने रहते हैं। किसी भी स्वप्न को गीता के माध्यम से ही सत्य किया जा सकता है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने समाज को ईश्वरीय तत्व की भाँति अनादि, शाश्वत और अनन्त संस्था बताया है और कहा उसकी आवश्यकता अनादिकाल से थी और आगे भी सृष्टि पर्यन्त आवश्यकता बनी रहेगी, इसलिए समाज जागरण के हेतु हमें उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना पड़ेगा जो कि समाज की प्रकृति के समान अनादि, शाश्वत और अनन्त हों। मनुष्य के विकास के लिये समाज की आवश्यकता सदैव बनी रहेगी। **(क्रमशः)**

मनुष्य कितना ही बलवान हो, कितना ही ज्ञानी हो, यदि वह आचरण में शुद्ध नहीं है तो समाज के लिए उसकी उपस्थिति आशंका और भय की वस्तु है। आचरण की शुद्धता पहली चीज है, जिसकी सामाजिक जीवन में जरूरत पड़ती है। इसके लिये आत्मिक बल चाहिए, स्वावलम्बन चाहिए।

- वीरेन्द्र वर्मा

मनुष्य की वास्तविक उन्नति किसमें?

– स्वामी रामसुखदास जी

मनुष्य चाहता है कि जो वस्तु मेरे पास अभी नहीं है, वह मिल जाए। उसी के मिलने से वह अपनी उन्नति मानता है। एक तो भोग नहीं है, वे मिल जाएँ और एक रुपये-पैसे नहीं हैं, वे मिल जाएँ। इस प्रकार जो चीज नहीं है, वह मिल जाए तो निहाल हो जाऊँ। परन्तु जो अभी नहीं है, वह मिल जाए, तो फिर बाद में भी नहीं रहेगा-यह बात भी सच्ची है। धन कितना ही मिल जाए, पर वह सदा साथ रहेगा नहीं। चाहे धन चला जाए, चाहे आप मर जायें और चाहे दोनों नष्ट हो जायें। जो पहले नहीं है, वह बाद में भी नहीं रहेगी। ऐसी वस्तु की मनुष्य इच्छा करता है, और उसे इकट्ठी करके समझता है कि हमने बड़ी भारी उन्नति कर ली। हमारे माँ-बाप साधारण व्यक्ति थे, पर हम लखपति-करोड़पति बन गये-यह बड़ा काम कर लिया। फिर इसमें वह अभिमान करने लगता है। वास्तव में देखा जाए तो यह महान मूर्खता है, मामूली मूर्खता नहीं।

जितने भी सम्बन्ध-जन्य सुख हैं, वे सब-के-सब दुःखों के ही कारण हैं-'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।' (गीता 5/22)। और कोई दुःख का कारण है ही नहीं। अर्जुन ने पूछा कि महाराज, मनुष्य को पाप में कौन लगाता है? तो भगवान ने उत्तर दिया-'काम एष' (गीता 6/37) अर्थात् जो अपने पास में नहीं है, उसकी कामना। रुपया मिल जाए, मान-बड़ाई मिल जाए, वाह-वाह मिल जाए, नीरोगता मिल जाए, आराम मिल जाए आदि कामना ही संपूर्ण पापों और दुखों की जड़ है। उत्पन्न और नष्ट होने वाली वस्तु की चाहना होने पर दुःख भोगना ही पड़ेगा, इसमें ब्रह्माजी भी नहीं बचा सकते। सम्बन्धजन्य सुख की इच्छा से कोरे दुःख और पाप ही होते हैं। सम्बन्ध के सुख की इच्छा से कोरे दुःख और पाप ही होते हैं। सम्बन्ध के समय थोड़ा-सा सुख मिलता है, पर पहले और बाद में दुःख-ही-दुःख रहता है। शरीर खराब हो जाता है, फिर नरकों में जाता है, चौरासी लाख योनियों में जाता है, इस प्रकार आगे दुःख-ही-दुःख आता है।

यह बात तो मैंने कई बार कही है कि वस्तु की इच्छा हुई तो उस इच्छा के मिटने से सुख होता है, पर वह समझता है कि वस्तु के मिलने पर सुख हुआ। यदि वस्तु के मिलने से ही सुख होता हो, तो उस वस्तु के रहते हुए फिर दुःख नहीं होना चाहिये। तो वास्तव में वस्तु के न मिलने का दुःख नहीं है, दुःख तो उसकी इच्छा का है वह इच्छा मिटते ही सुख होता है। यदि वह इच्छा सदा के लिये मिट जाए, तो मौज हो जाए।

जो नहीं है, उसकी प्राप्ति में बहादुरी मानना कोरा वहम ही है। जो परमात्मा सदा से हैं और सदा रहेंगे-उसे प्राप्त कर लेना ही वास्तव में उन्नति है। केवल उत्पन्न और नष्ट होने वाले पदार्थों की लोलुपता के कारण ही उस नित्य प्राप्त तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो रही है। यदि नाशवान के सम्बन्ध का त्याग कर दें, तो वह जैसा है वैसा मिल जाएगा। वह तो मिला हुआ ही है। केवल दृष्टि उस तरफ नहीं है। दृष्टि केवल नाशवान भोग और और संग्रह की तरफ है, जो कि है नहीं, रहेगा नहीं। परमात्मा थे, हैं और रहेंगे तथा एक बार मिलने पर फिर कभी नहीं बिछुड़ेंगे। उनके मिलने पर फिर कभी किञ्चिन्मात्र भी मोह, दुःख नहीं होगा-'यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहम्' (गीता 4/35)। वे अपने हैं और उन पर अपना वैसा अधिकार है, जैसा माँ पर बच्चे का अधिकार रहता है। बच्चा रोकर के माँ से चाहे जो करा ले, ऐसे भगवान से चाहे जो करा लो! भगवान कहते हैं-मैं तो हूँ भगतन को दास मेरे भगत मुकुटमणि! धन ने कभी कहा कि तू मेरा मुकुटमणि है? कभी कहा कि मैं तुम्हारा हूँ, तुम हमारे हो? पर भगवान् कहते हैं कि तुम हमारे हो-'ममैवांशः' (गीता 15/7)। वे अपने हैं और सदा अपने साथ रहते हैं। उनसे कभी वियोग हुआ नहीं, है नहीं और होगा नहीं। ऐसे परमात्मा से विमुख होकर उसे चाहते हैं जो अभी नहीं है, और मिल जाएगा तो अन्त में नहीं रहेगा। क्या अक्ल पर पत्थर पड़ गये, जो उल्टा-ही-उल्टा चल रहे हैं। नाशवान् की इच्छा तो कभी पूरी होगी नहीं। पूरी हो भी कैसे? वह अधूरा आप पूरे, वह नहीं रहने वाला और आप रहने वाले परमात्मा के अंश। धन के लिये आप धर्म छोड़ देते हैं, आराम छोड़ देते हैं, सुख छोड़ देते हैं; सब कुछ छोड़कर धन के पीछे पड़े रहते हैं। पर जब वह

धन जाने लगता है, तब आपसे पूछता ही नहीं। उस निर्दयी को दया नहीं आती कि इसने मेरे लिये धर्म-कर्म छोड़ा है, सत्य बोलना छोड़ा है, झूठ, कपट, बेईमानी आदि बड़े-बड़े पापों को स्वीकार किया है, तो कम-से-कम इसकी सम्मति तो लेता जाऊँ। पर भगवान के लिये त्याग करें तो ?-

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा माँ शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे।।

(श्रीमद्भागवत् 9/4/65)

भगवान कहते हैं कि जो पुरुष स्त्री, घर, पुत्र, कुटुम्बीजन, प्राण, धन और इस लोक का त्याग करके एक मेरी शरण में आ गये हैं, उनका त्याग करने का उत्साह भी मेरे मन में कैसे हो सकता है? तो ये स्त्री, घर, पुत्र आदि सब-के-सब एक दिन छूटने वाले ही हैं। इन छूटने वालों को ही छोड़ दें, तो इसी से भगवान राजी हो जाते हैं और हमारा बड़ा अहसान मानते हैं। इन वस्तुओं को क्या कोई अपने साथ रख सकता है? तो छूटने वालों को छोड़ने से ही भगवान राजी हो जायें, इतना सस्ता है कोई सौदा?

कितना ही धन कमा लो, कितना ही भोग भोगो, कैसा ही शरीर प्राप्त कर लो, सब-का-सब छूटने वाला है। इसमें कोई शंका है क्या? फिर इनके लिये उद्योग करते हैं और इनके मिलने पर बड़े राजी होते हैं, कितनी मूर्खता है।

परमात्मा से हम अपनी तरफ से विमुख हुए हैं, इसीलिये वे नहीं मिल रहे हैं।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं,
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

(मानस 5/43/1)

आप केवल भगवान को अपना मान लें कि भगवान ही हमारे हैं, और ये वस्तुएँ हमारी नहीं है। इतनी ही तो बात है। कठिन नहीं है। जब तक आप पक्का विचार नहीं करते, तब तक बड़ा कठिन है। पक्का विचार करने पर कोई कठिन नहीं। स्वीकार कर लें कि दुःख, सन्ताप, अपमान, निन्दा, रोग, मृत्यु कुछ भी आ जाए, हम तो भगवान की तरफ ही चलेंगे। फिर हमें कोई नहीं हटा सकता।

भोग और संग्रह की इच्छा के ऊपर ही सब नरक, और चौरासी लाख योनियाँ अवलम्बित हैं। संपूर्ण दुःख, सन्ताप, पाप आदि इसी से होते हैं। फिर इनकी प्राप्ति में अपनी बहादुरी मानना, उन्नति मानना कितनी बड़ी भूल है। सोचते हैं कि इतना धन मिल गया, तो हमारा उद्योग सफल हो गया। अरे, सफल नहीं महान् विफल हो गया। एक पल में ही सब छूट जाएगा। जो लखपति और करोड़पति हैं, वे सुखी नहीं हैं, पर जो भगवान में लगे हैं, वे सुखी हैं, मौज-आनन्द में हैं।

जितना भोग और ऐश्वर्य छूटेगा, उतनी ही शान्ति होगी। एक श्लोक का भाव है कि आशारूपी रस्सी से बँधा हुआ पुरुष तो भागता-फिरता है, और खुला हुआ पुरुष मौज से बैठता है। 'आशया ये कृतादासास्ते दासाः सर्वदेहिनाम्।' जो आशा के दास हैं कि धन मिले, मान मिले, अमुक वस्तु मिले, वे संपूर्ण शरीर धारियों के दास हैं, और 'आशा येन कृता दासी तस्य दासायते जगत।' जिसने आशा को दास बना लिया, उसके सभी दास हो जाते हैं। मनुष्य एक आशा का दास हो जाएगा, तो दुनिया-मात्र उस पर सवार हो जाएगी। वह वृक्ष के पास जाएगा, तो उससे भी 'यह ले लें, वह ले लें' की भावना रहेगी। मनुष्य होकर भी अक्ल कहाँ गयी? कब अक्ल आयेगी? ये शरीर इन्द्रियाँ, भोग, जवानी आदि कितने दिनों तक रहेंगे? फिर भी रात-दिन जाने वाले पदार्थों की आशा में ही लगे रहते हैं और नित्यप्राप्त परमात्मा की तरफ ध्यान ही नहीं देते।

परमात्मा नित्यप्राप्त है और संसार अप्राप्त है। नित्य प्राप्त की प्राप्ति यदि कठिन है, तो क्या अप्राप्त की प्राप्ति सुगम है? परमात्मा कभी अप्राप्त नहीं होते। हम ही उनसे विमुख हुए हैं, वे विमुख नहीं हुए। परमात्मा से विमुख होने से वे दूर दीखते हैं, और संसार के सम्मुख होने से वह नजदीक दीखता है। वास्तव में संसार कभी नजदीक आया ही नहीं और भगवान कभी दूर हुए ही नहीं। भगवान की ताकत नहीं दूर होने की और संसार की ताकत नहीं पास आने की और ठहरने की। कितनी विलक्षण बात है। जैसे बालक माँ-माँ करता गोद में आ जाए, तो माँ प्रसन्न हो जाती है। वह बालक को खिलाती-पिलाती है, कपड़े पहनाती है, सब कुछ वही करती है, और बालक के गोदी में आने पर राजी हो जाती है। अब इसमें बालक का क्या लगा? ऐसे ही हम भगवान् के सम्मुख हो जाएँ, तो वे राजी हो जाएँ-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

●

संघशक्ति/4 जून/2022

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

चौहानों के यश स्तम्भ और पृथ्वीराज का सामाजिक परकोटा, भाग–1

पृथ्वीराज चौहान के समय तक चौहानों व अन्य राजपूत कुलों के लिए इस्लामी आक्रान्ता कोई अज्ञात शक्ति नहीं रह गए थे। यदि हम पृथ्वीराज को उनसे पूर्ववर्ती चौहान शासकों व इस्लामी शक्तियों के संघर्ष की पृष्ठभूमि पर खड़ा करें तो तत्कालीन धरातल का अनुभव कर सकेंगे।

पृथ्वीराज से पहले के चौहान शासकों पर पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य अच्छा प्रकाश डालते हैं। चाहमान के बाद चौहानों के विदेशी आक्रान्ताओं से हुए संघर्ष का संक्षिप्त इतिहास निम्नलिखित है।

भार्तवृद्ध द्वितीय, 8वीं सदी ई. :

वल्लभी मूल का इनका परिवार उस समय कन्नौज के प्रतिहार शासकों का सामन्त था जब वो अरबों को खदेड़ रहे थे।[1] अरबों को निकालने के बाद प्रतिहारों ने भार्तवृद्ध को लाट, भरुच (भृगुकच्छ) क्षेत्र के शासनार्थ नियुक्त किया था।[2]

गोविन्दराज चौहान तृतीय :

प्रबन्धकोष कहता है कि गोविन्दराज ने (गजनी के) सुल्तान महमूद को परास्त किया।[3] इस कथन की आंशिक पुष्टि फरिश्ता ने यह लिखते हुए की है कि ''सुलतान महमूद को हिन्दुस्तान से लौटते हुए सिंध का रास्ता अख्तियार करना पड़ा क्योंकि मारवाड़ वाले रास्ते पर अजमेर का राजा एक बड़े लश्कर के साथ खड़ा था।'' दोनों स्रोतों का समन्वय करें तो संभव है कि इन सेनाओं की अग्रिम टुकड़ियों के बीच कोई झड़प हुई हो जिसमें गजनवियों के पिटने के बाद महमूद ने दूसरा मार्ग लेना ठीक समझा हो। और जहाँ भारतीय स्रोत ने इसे पूरे युद्ध का रूप देकर राजा को विजयश्री की माला पहना दी, वहीं इस्लामी स्रोत ने इस घटना को पिघला कर मात्र मार्ग बदलने की बात कहकर इतिश्री कर दी। इस प्रकार के पूर्वाग्रह भरे आधिक्य और न्यून इतिहास के अध्ययन में निरंतर मिलते रहते हैं।

चामुंडराज चौहान :

अनेकों स्रोत इन्हें हेजिमुद्दीन नामक सेनापति के नेतृत्व में आई एक इस्लामी सेना पर विजय का श्रेय देते हैं।[4] नाडोल (मूल नाम नडवल) के चौहानों के ताम्रपत्र भी चामुंडराज द्वारा इस प्रकार कई विजय प्राप्ति की पुष्टि करते हैं। पृथ्वीराज से सदियों पूर्व ही नाडोल में अजमेर के समकक्ष एक और चौहान राज्य स्थापित हुआ था। हेजिमुद्दीन से ये युद्ध लगभग 1050–1065 ई. की अवधि में हुए।

दुर्लभराज चौहान तृतीय :

1079 ई. में गजनी के सुल्तान इब्राहिम की ओर से हुए एक आक्रमण के विरुद्ध लड़ते हुए दुर्लभराज वीरगति को प्राप्त हुए।[5]

पृथ्वीराज चौहान प्रथम :

वैसे तो प्रतिहार साम्राज्य के ढलान पर आते ही साम्भर/अजमेर के चौहान एक स्वतंत्र राजनैतिक शक्ति बन चुके थे। पर पृथ्वीराज प्रथम के शासनकाल में ही चौहानों के महत्त्वाकांक्षी प्रसार की पौ फटी। इस राजा ने पूर्व दिशा में चम्बल–पार्वती नदियों तक राज्य का विस्तार किया व इनके शासनकाल के उत्तरार्ध में इन्हें शेखावाटी के जीण माता शिलालेख (1105 ई.) में 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि दी गयी।[6] इनके द्रम्म (सिक्के) बयाना–मथुरा के पास भी मिलते हैं और बिजोलिया शिलालेख से भी ऐसे ही संकेत प्राप्त होते हैं। अजमेर संग्रहालय के खंडित शिलालेख व प्रबन्धकोष की वंशावली दोनों के अनुसार पृथ्वीराज प्रथम ने सफलतापूर्वक इस्लामी सेनाओं के आक्रमण ध्वस्त किये।[7] इस्लामी स्रोतों में शासनकाल से मिलान करने पर ये आक्रमण गजनवी सुलतान मसूद तृतीय इमादूद्दौलाह (1099–1115 ई.) के एक सेनापति द्वारा निर्देशित मिलते हैं।[8]

अजयराज चौहान (शासन 1108–1132 ई.) :

आप परम शिव भक्त थे। सामान्य धारणा में इन्हें अजयमेरु अर्थात् अजमेर नगरी का संस्थापक कहा जाता है किन्तु यह अर्ध सत्य होगा। कारण यह है कि अजमेर में अजयराज चौहान से पहले भी छोटी–मोटी बसावट थी जिसे इस राजा ने कई गुना बढाया, सुधारा और राजधानी वहाँ ले आए। अजयराज का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा पास ही एक पर्वत (मेरु) पर तारागढ़ नामक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण। यह दुर्ग

सदियों तक अरावली पर्वत शृंखला पार करने के एक सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण द्वार का प्रहरी बना रहा। सो अजयराज चौहान व अजमेर नगरी का गौरव एक होना कोई अतिशयोक्ति नहीं।[9] पर आजकल राजस्थान के किलों की टूटफूट, अतिक्रमण और उदासीनता से जो दुर्दशा हुई है, उसे देखकर तो अपनी जड़ों से जुड़ा कोई भी व्यक्ति आँखें गीली कर बैठेगा। खैर, अढाई दिन का झौंपड़ा, मस्जिद (पूर्व में सरस्वती विद्या मंदिर) से मिले एक शिलालेख के अनुसार तो अजयराज ने उज्जैन तक जीत लिया था। मालवा आदि देशीय राज्यों के अतिरिक्त अजयराज की भिड़ंत गजनवियों से भी हुई। विषय था नागौर पर अधिकार, जो उस समय अजयराज के अधीन था। इस पर एक ओर तो प्रभावकचरित का कथन है जिसके अनुसार अजयराज ने नागौर पर 1121 ई. तक अधिकार रखा।[10] दूसरी ओर फारसी स्रोत हैं (तबकात इ नासिरी व फरिश्ता) जो कहते हैं कि सुल्तान बहराम शाह ने अपने प्रांतीय अधिकारी मुहम्मद बहलीम को 1112 ई. में उसके परिवार और खजाने सहित नागौर जाने का आदेश दिया।[11] इस विरोधाभास में दो संभावनाएँ दिखती हैं।

1. नागौर पर चौहान गजनवी संघर्ष उस समय चरम पर था और भूमि पर आधिपत्य बदलता रहा।
2. श्री राम बृक्ष सिंह का मत- बहलीम जैसा कि ज्ञात है पहले भी गजनी के सुल्तान से विद्रोह कर चुका था। सो इस बार उसके सम्बन्ध वहाँ की सत्ता से बुरी तरह टूट गए और वो बचने के लिये चौहान राज्य में शरण लेकर उनके लिये नागौर के किले का प्रशासक बना। बहलीम के अचानक अपने परिवार और धन सहित नागौर आ जाने के कारण हमें भी यही विश्लेषण सत्य के निकट प्रतीत होता है।

अजयराज ने अपने पुत्र अर्णोराज को दायित्व देकर संन्यास ले लिया।

अर्णोराज या आनलदेव चौहान : (शासन 1132-1151 ई.)

जिनदत्त सूरि स्तुति की 1113 ई. में अन्य से उतारी गई एक प्रति में अजमेर दुर्ग को इनके नाम पर 'गढ अनलिउ' कहा गया। सो जन्म लगभग 1110 ई. में रख सकते हैं। अर्णोराज ने बहराम शाह के नेतृत्व में चढ़ाई करने आई एक मुस्लिम सेना को इतनी भीषण पराजय दी कि भयानक विनाश के बाद बचे खुचे शत्रु सैनिक जान बचाने मरुभूमि में उतर गए। वहाँ भी अधिकांश काल का ग्रास बन गए। 'म्लेच्छ रक्त से अपवित्र हुई धरा को फिर पवित्र करने को' अर्णोराज के काल में ही बना इस अद्भुत विजय का स्मृति चिह्न आज भी आनासागर झील नाम से अजमेर में दर्शनीय है। मुस्लिम सैनिकों का भागते हुए नागौर के बजाए और आगे मरुभूमि में चले जाना भी दशरथ शर्मा जी की यह बात मानने में कठिनाई देता है कि अजयराज और अर्णोराज चौहान के काल में कोई मुस्लिम शक्ति नागौर में बैठी शासन कर रही थी।

बाद में अर्णोराज ने उत्तर पूर्व में दिल्ली, मेरठ, बुलंदशहर (बारन) आदि क्षेत्रों में सैन्य अभियान किये जिससे चौहान राज्य और सामंत पंक्ति का विस्तार हुआ।।[12]

अर्णोराज की पाटन के सोलंकियों से भी भिड़ंत हुई जिसमें अंततः कौन कितना विजयी हुआ इस पर तो मतभेद है, किन्तु संधि स्वरूप अर्णोराज और सोलंकी राजकुमारी काञ्चनदेवी का विवाह भी हुआ। इसी विवाह की संतति पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर चौहान थे।[13]

अर्णोराज की पहली पत्नी (सुधवा) से प्राप्त सबसे बड़े पुत्र जग्गदेव चौहान ने सिंहासन प्राप्ति के लिए अपने ही पिता का वध कर दिया।[14]

(क्रमशः)

1. ग्वालियर शिलालेख, एपिग्राफिया इंडिका, खंड-18, पृ. 99-114, 2. नागभट्ट प्रतिहार प्रथम के काल से हांसोट ताम्रपत्र 756 ई., एपिग्राफिया इंडिका, खंड-12, पृ. 197-204, 3. प्रबन्धकोष वंशावली, सिंधी जैन ग्रंथमाला संस्करण, पृ. 133-134, 4. उपरोक्त प्रबन्धकोष वंशावली; सुर्जनचरित; हम्मीर महाकाव्य, सर्ग-1, श्लोक-104, 5. पृथ्वीराजविजय सर्ग-5, श्लोक 70; मुहम्मद कासिम फरिश्ता कृत गुलशन इ इब्राहिम, अनुवाद जॉन ब्रिग्गस, खंड-1 पृ. 80, 6. पृथ्वीराज रासो की विवेचना, पृ. 683, 7. अर्ली चौहान डायनस्टीज, पृ. 37-38; प्रबन्धकोष वंशावली, 8. तबकात इ नासिरी खंड-1, पृ. 106-107, 9. अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव-हरबिलास सारदा, पृ. 33, 10. प्रबन्धकोष, पृ. 133 पर दिया सुल्तान शहाबुद्दीन नाम के अभाव में लिखा गया साधारण रिक्ति-पूरक लगता है, 11. ब्रिग्गस, खंड-1, पृ. 151, 12. अढ़ाई दिन का झोंपड़ा (सरस्वती कंठाभरण) से मिली चौहान प्रशस्ति, अर्ली चौहान डायनस्टीज, पृ. 203-204, 13. कीर्ति कौमुदी, सर्ग-2, श्लोक 28, 14. पृथ्वीराजविजय सर्ग-5।

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

आपसी सम्बन्ध जोड़ना :

अनेकता में एकता प्रकृति की एक खास विशेषता है। आम के सभी वृक्षों की पत्तियाँ आम की ही पत्तियाँ कहलाती हैं, परन्तु लाखों पत्तियों में कोई भी दो पत्तियाँ एक समान नहीं होती। एक ही प्रजाति की चिड़ियों में कोई भी दूसरे के बिलकुल समरूप नहीं होती। मानव-जाति तो एक ही है, पर एक व्यक्ति से दूसरे का अन्तर सुस्पष्ट है। यद्यपि पिन चुभ जाने से सभी लोगों के शरीर से खून बहने लगता है, परन्तु खून में भी विभिन्न वर्ग और उपवर्ग हैं। किन्हीं दो व्यक्तियों का रक्त अपनी रासायनिक संरचना में एक समान नहीं होता। कोई रोग लग जाने पर मनुष्य बीमार पड़ जाता है। परन्तु रोग भी तो हजारों हैं। सभी खाद्य पदार्थ खाने के लिये ही हैं, परन्तु प्रत्येक का स्वाद भिन्न है।

गौतम बुद्ध ने लोगों की रुचि, प्रवृत्ति और परिवेश के आधार पर उन्हें चार वर्गों में विभाजित किया है–

1. अन्धकार से अन्धकार की ओर जाने वाले लोग।
2. प्रकाश से अन्धकार की ओर जाने वाले लोग।
3. अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने वाले लोग।
4. प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाले लोग।

झोपड़ी में जन्मे एक शिशु की कल्पना कीजिए। वह बिना किसी सुविधा, बिना सुपोषण व स्वास्थ्य विषयक सावधानी, बिना शिक्षा और बिना चरित्र-विकास के प्रति उचित ध्यान के ही बड़ा होता है। उसकी प्राथमिक प्रेरणा भूख मिटाना ही है। वह उचित मार्गदर्शन या किसी सभ्य बनाने वाले प्रभाव के अभाव में ही बढ़ता है। सम्भव है वह बुरी संगति में पड़ जाए। अन्ततः वह किसी प्रकार का सामाजिक या सांस्कृतिक संस्कार पाए बिना ही संसार से चला जाता है। कहा जा सकता है कि वह शिशु अन्धकार की ओर चला गया।

मान लीजिए एक झोपड़ी में जन्मा शिशु बड़ा होकर शहर में चला जाता है। वहाँ एक व्यवसायी उस तेजवान कर्मठ बालक से प्रसन्न होकर उसे प्रशिक्षित करने का प्रबन्ध करता है। वह बालक अपने नियत कर्तव्यों को निष्ठा और ईमानदारी से करते हुए अपने उपकारी व्यवसायी की सद्भावना प्राप्त कर लेता है। आगे चलकर यह बालक स्वयं भी एक व्यवसायी बन जाता है। वह विनम्रता और उदारता के सद्गुणों से भी युक्त हो जाता है। क्या यह अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने के समान नहीं है?

संसार में कुछ लोग अच्छे परिवेश में जन्म लेते हैं। वे जीवन में बिना किसी अभाव के ही बढ़ते जाते हैं। वे ज्ञानी तथा गुणियों के बीच निवास करते हैं। वे स्वभाव के अच्छे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। वे रोगों से संक्रमित हो जाते हैं, दुर्बल हो जाते हैं और दुःखी होकर संसार से विदा होते हैं। उन लोगों ने प्रकाश से अंधकार में प्रवेश किया है।

कुछ लोग अच्छे परिवार में जन्म लेते हैं और बचपन से ही एक सुसंस्कृत परिवेश में बढ़ते हैं। उनके माता-पिता सुसंस्कृत तथा धर्मात्मा होते हैं। वे महापुरुषों का संग करते हैं और ज्ञानी तथा विवेकवान लोगों से मार्गदर्शन पाते हैं। वे आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर चलते हुए परमानन्द की उपलब्धि करते हैं। ऐसे लोग प्रकाश से प्रकाश की ओर अग्रसर होते हैं।

दार्शनिक तथा कवि भर्तृहरि की एक उक्ति सामाजिक संरचना को समझने की कुंजी है। समाज के विभिन्न प्रकार के लोगों के स्वभाव तथा आचरण का वर्णन करते हुए वे अपने 'नीतिशतकम्' (64) में कहते हैं–

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान्परित्यज्य ये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।64।।

– 'कुछ लोग किसी पुरस्कार की इच्छा से रहित

तथा अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की चिन्ता किए बिना ही सर्वदा दूसरों के कल्याण-साधन में लगे रहते हैं। इन्हें सत्पुरुष कहा जाता है। ये लोग अपनी असुविधाओं पर ध्यान दिए बिना ही सर्वदा दूसरों की सहायता में लगे रहते हैं। सामान्य कोटि के लोग अपनी इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति हेतु कार्य करते हुए भी यथासमय दूसरों की मदद करते हैं। नरदेहधारी कुछ ऐसे राक्षस भी हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए किसी का सिर काटने जैसे जघन्य अपराध से भी पीछे नहीं हटते। और बिना किसी लाभ के ही दूसरों को पीड़ित करने वालों को कौन-सी संज्ञा दी जाए, यह मुझे नहीं मालूम।'

मनुष्यों में ऐसे लोग भी हैं जो अपना अधिकांश समय सोने में बिता देते हैं। कुछ अन्य लोग कार्य करते हुए समय बिताते हैं। कुछ अन्य लोग भी हैं जो केवल ध्यान और चिन्तन करते हैं। सभी लोगों को गहरी निद्रा की आवश्यकता होती है, पर सभी लोगों की निद्रा की अवधि समान नहीं होती। कुछ लोग कभी बिस्तर से उठने को उत्सुक नहीं होते, और कुछ लोग प्रतिदिन केवल छह घण्टे सोकर ही काम चला लेते हैं। कहते हैं कि निकोलाइ टेस्ला नामक वैज्ञानिक ने अपनी प्रयोगशाला में शोध करते हुए लगातार 76 घण्टे जागकर बिता दिए थे।

किसी बात की शिक्षा ग्रहण करने के ढंग में भी लोगों में बड़ी विभिन्नता होती है। एक प्रकार के लोग दूसरों की कुछ गलतियों के फलस्वरूप उन्हें पीड़ित देखकर स्वयं उन गलतियों से बचने के लिये सतर्क रहते हैं। कुछ लोग स्वयं कोई गलती करके उसके फलस्वरूप उत्पन्न दु:ख के अनुभव से शिक्षा प्राप्त करते हैं। एक अन्य प्रकार के लोग भी हैं, जो गलती के फलस्वरूप हुए दु:ख के बावजूद भी कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करते और उन्हीं गलतियों को दुहराते रहते हैं।

वैराग्य या अनासक्ति भाव की अनुभूति में भी विभिन्नताएँ रहती हैं। एक तरह का क्षणिक वैराग्य भी होता है, जो धार्मिक प्रवचन के प्रभाव से उत्पन्न होता है। किसी प्रियजन की मृत्यु को देखकर सुखों का अस्थायी त्याग हो जाता है। तीव्र प्रसव-पीड़ा के अनुभव से कभी-कभी स्त्रियों को इन्द्रिय-सुखों से वैराग्य हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से भी लोगों में धनी, निर्धन तथा मध्यम वर्ग के भेद हैं। और जीवन बिताने के तरीकों की दृष्टि से तो विभिन्नताओं का कोई अन्त ही नहीं है।

चरित्रों की विभिन्नता के कारण व्यक्तियों के बीच का आपसी सम्बन्ध जटिल हो जाता है और उनके लिए परस्पर तालमेल बैठा पाना कठिन हो जाता है। यही वह मूल कारण है, जिसके आधार पर मनुष्यों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है। वर्ग-विभाजन में कोई दोष नहीं, परन्तु एक-दूसरे का नाश करने को प्रवृत्त कराने वाला आपसी द्वेषभाव ही भयानक और त्याज्य है। चरित्र की विभिन्नताओं के आधार पर मनुष्यों के साथ व्यवहार हेतु 'हितोपदेश' चार तरीके बताता है। पहला तरीका मित्रतापूर्वक 'समझाना' है। इसे संस्कृत में 'साम' कहते हैं। पर केवल कुछ ही लोग इस प्रकार से रास्ते पर आ सकते हैं। कुछ लोग आपकी सलाह सुनकर केवल तभी उसके अनुसार चलेंगे, जब आप इसके लिए कुछ पुरस्कार दें। यह तरीका 'दाम' कहलाता है। तीसरा तरीका 'भेद' का है। इसमें लोगों के बीच स्पर्धा उत्पन्न करके प्रतियोगिता की भावना से काम पूरा कराया जाता है। और अन्तिम तरीका 'दण्ड' है, जिसमें किसी से अपनी इच्छानुसार कार्य कराने के लिए दण्ड की धमकी अथवा दण्ड भी दिया जाता है। पूर्वकाल में यह भाव था कि बुरे कार्य करने वाली प्रजा को दण्ड देना राजा का कर्तव्य है। परन्तु आज लोकतांत्रिक समानता के तर्क के आधार पर कारावास में पड़ा एक अपराधी भी एक सदाचारी व्यक्ति के तुल्य विशेषाधिकारों की माँग कर सकता है।

वह कौन-सा मूलभूत तत्त्व है, जो लोगों को एक सूत्र में आबद्ध करता है और परिवार, संगठन या समाज जैसी विभिन्न इकाइयों के घटकों में आपसी मैत्री का बन्धन सुदृढ़ करता है? इसके कारण व्यक्ति अपनी स्वार्थपरता का दमन करता है, अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के सामने अपने अहंकार को नगण्य कर देता है और अपने दावों

और अधिकारों की उपेक्षा करने को तैयार हो जाता है। ईशवर में विश्वास-रूपी मूल भाव की जरूरत है। स्वार्थपरता तथा झूठी मान-प्रतिष्ठा की भावना से छुटकारा पाकर और एकमात्र परमेश्वर को प्रसन्न करने की इच्छा से धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्यों का सम्पादन करने पर व्यक्ति मानसिक शान्ति पा सकता है और निराशा, चिन्ता एवं भय की घातक भावनाओं से मुक्त हो सकता है। सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करने के उत्साह और जीवन के असंख्य अभावों की पूर्ति के लिए भाग-दौड़ के बीच, व्यक्ति को सदैव अपने आप से पूछना चाहिए कि क्या वह सही कदम उठा रहा है? कोई कदम उठाने से पहले उसे भलीभाँति सोच लेना चाहिए कि वह नैतिक है या नहीं।

सबके संरक्षक :

स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित करके और सभी दु:खों तथा परेशानियों के समय भगवान से सहारे के लिए याचना करके, व्यक्ति न केवल निराशा के भार से, अपितु जीवन की समस्त बाधाओं से मुक्त हो जाता है। जीवन की कठिनाइयों को उन परीक्षाओं के रूप में स्वीकार करना चाहिए, जिन्हें भगवान हमारे आन्तरिक बल की जाँच करने के लिए हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। ये कठिनाइयाँ हमारा चरित्र-गठन करती है। छेनी पर हजारों प्रहार करने के बाद ही मूर्ति गढ़ी जाती है।

भगवान भक्तवत्सल, कृपासागर और दयानिधान हैं। भक्त की प्रार्थना यदि सच्ची हो, तो वे उसे जरूर सुनते हैं और उसे उसकी इच्छित वस्तु तथा सुरक्षा प्रदान करते हैं। भगवन्नाम का सतत् जप करते रहने पर भक्त कभी भी उनके सहारे से वंचित नहीं होता। प्रार्थना, भजन तथा जप के द्वारा व्यक्ति को ईश्वर की रक्षाशक्ति में दृढ़ विश्वास विकसित करना चाहिए।

हममें से अधिकांश लोगों का भगवान में विश्वास उतना ही छिछला है, जितना कि उन बच्चों का जो बात-की-बात में भगवान के नाम की कसम खाते रहते हैं। ईश्वर में सच्चा विश्वास हो जाना सारी समस्याओं से छुटकारा पा जाने के समान है। यदि किसी का विश्वास निर्बल है, तो उसे सबल करना सम्भव है। परन्तु इस विश्वास को एक दिन में ही नहीं पाया जा सकता। यह बाजार से सब्जी खरीदने जैसा नहीं है। दीर्घकाल तक साधन-भजन, आन्तरिक प्रार्थना, सत्संग और ईश्वर के कृपालब्ध तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न सन्त-महात्माओं के चरित्र का वर्णन करने वाले पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन से भगवान में विश्वास दृढ़ होता है। भगवान से प्रार्थना करने की शुरुआत करने के लिए हमें विश्वास के दृढ़ हो जाने तक की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। जैसे हम अपने आत्मीय प्रियजनों के पास जाकर, उन्हें अपनी कठिनाइयों से अवगत कराकर उनसे सहानुभूति की अपेक्षा करते हैं, ठीक वैसे ही हम निर्जन में जाकर भगवान से बारम्बार आन्तरिक तथा अश्रुपूरित प्रार्थना कर सकते हैं। इससे निश्चय ही हमें काफी लाभ होगा। यह हमारे मन को सबल बनाएगा। कठिनाइयों के समय लोग विभिन्न मन्दिरों में जाकर प्रार्थना करते हैं और भेंट चढ़ाते हैं। यह लाभकारी अवश्य है, परन्तु दृढ़ विश्वास के साथ प्रार्थना करने पर प्रभाव महत्तर और परिणाम शीघ्र होगा। वर्तमान कठिनाई की तीव्रता चाहे जितनी भी हो, भगवान की असीम शक्तियों में विश्वास तथा आन्तरिक प्रार्थना मन में प्रभूत बल का संचार करेगी।

बिना-विश्वास प्रार्थना बिना-डाक टिकट लगे पत्र की तरह है। और भक्तिशून्य प्रार्थना बिना-पता लिखे पत्र के समान है।

विश्वास और तीव्र व्याकुलता से सरोबार प्रार्थना द्रुतगामी टेलीग्राम या ई. मेल के समान है।

कर्तव्य-पालन :

आध्यात्मिक जीवन का चरम बिन्दु :

'तैरते रहो, कभी हार न मानो, कभी साहस मत छोड़ो, तट पर पहुँचकर विजयी बन जाओ'- सन्तों के इस उपदेश का एक वृद्धा माँ ने प्राय: अक्षरश: पालन किया था। एक समृद्ध जीवन बिताकर भी वे कभी उसमें आसक्त नहीं रहीं। अपना अन्तकाल आने पर वे अपने पुत्र को बुलाकर जीवन में सीखे हुए पाठ बताने लगीं- 'बचपन में ही मैंने

सुन रखा था कि ईश्वर का स्मरण न करने वाला मन अपवित्र होता है और वह दिन अशुभ होता है जिस दिन ईश्वर को याद न किया जाए। मैं बचपन से ही इस बात को मानकर चलने लगी। बचपन में ही मैं समझ गयी थी कि परमात्मा हमारे हृदय-मन्दिर में बैठकर सदा हमारे कर्मों को देख रहे हैं; अतः मैंने अपने कार्य को सुव्यवस्थित और साफ-सुथरे ढंग से करना सीख लिया। जब मुझे बताया गया कि पति परमेश्वर हैं, तो मैंने उनकी छाया बनकर रहने का प्रयास किया और कभी उन्हें अप्रसन्न करने की बात मेरे मन में नहीं आयी। कभी-कभी उनकी आशा के अनुरूप न चल पाने पर मैं उनसे क्षमा माँगती। मैंने अश्रुपात करते हुए भगवान से प्रार्थना की, ''हे प्रभो, मैं सांसारिक वस्तुओं की इच्छा से प्रलोभित न होऊँ। मैं तुम्हारे नाम-जप में रस का आस्वादन करूँ। मुझे यह विश्वास दो कि तुम्हारी इस दुनिया के सभी लोग तुम्हारे ही प्रतिनिधि हैं। मुझे इतनी शक्ति दो कि मैं पूरे धैर्य से किसी भी प्रकार के दुःख या अपमान को सह सकूं।'' मैं ईश्वर से ऐसी ही प्रार्थना किया करती थी। मुझे दृढ़ विश्वास था कि बच्चे भगवान के ही उपहार हैं और उनकी जरूरतों को पूरा करते हुए मैं मन-ही-मन सोचती, ''प्रभु मुझे देख रहे हैं। मुझे बच्चों की देखभाल करनी है और पतिदेव को प्रसन्न रखना है।'' इस विश्वास के साथ मैं अपने कर्तव्यों का पालन किया करती थी। बच्चों का शोरगुल तथा उनकी चंचलता मेरे पतिदेव को सहन नहीं होती थी। मेरा दृढ़ विश्वास था कि भगवान इसके द्वारा मेरी परीक्षा ले रहे हैं। जब मुझे एक ऐसी पुत्रवधु मिली, जो हमारी जीवन-शैली के साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाती थी, तो एक बार फिर मैंने अश्रुपूरित नेत्रों के साथ प्रार्थना की। जानते हो मुझे भगवान से क्या संदेश मिला? ''पुत्री! धैर्य रखो। यदि सब कुछ तुम्हारी इच्छा के अनुकूल होता रहेगा, तो तुम इस मायामय संसार में अधिकाधिक फँसती जाओगी। अब तुम्हें जगदम्बा के दर्शन हेतु तैयारी करनी चाहिए। भाग्य ने ही तुम्हारी पुत्रवधू को ऐसी प्रवृत्ति दी है, ताकि तुम मोहमार्ग से दूर रहो और तुम्हारा धैर्य सुदृढ़ हो।''

'तब से मुझे अपने पौत्रों की देखभाल का भी काम मिल गया। मैंने यह सोचकर खुद को सांत्वना दी कि जैसे स्वर्णकार सोने को भट्टी में डालकर उसका शोधन करता है, वैसे ही भगवान भी मेरा शोधन कर रहे हैं। मैं अपने पौत्रों की देखभाल करने लगी और दिन-रात उन पर नजर रखने लगी। इसके लिए मुझे कोई प्रशंसा नहीं मिली। पर ज्यों ही मुझे लगा कि यह संसार मुझे प्रलोभित कर रहा है, मैंने अपनी प्रार्थना की तीव्रता बढ़ा दी। बच्चों! अब मैं तुम सभी को छोड़कर जाने के लिए तैयार हूँ। कोई भी अमर नहीं है। मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। मैंने कोई परीक्षा नहीं पास की है। परन्तु मुझे अनुभव होता है कि मेरा जीवन उन्नत हो गया है, क्योंकि मैं अपने पति के प्रति निष्ठावान थी, भगवान के प्रति श्रद्धालु थी और अपने बड़ों की आज्ञाकारी थी। अपने जीवन के दुःख-कष्टों को भगवान द्वारा ली जा रही परीक्षा के रूप में ग्रहण करो, उन्हें सहन करो और भगवान के सम्मुख अश्रुपूरित नेत्रों के साथ निरंतर प्रार्थना करो। इससे निश्चय ही तुम्हें चिरन्तन सुख प्राप्त होगा। बच्चो! तुम भी अपने जीवन में इसी पथ को अपनाओ।'

बच्चों में ईश्वर का दर्शन करते हुए उसकी सेवा करना भी एक तरह की उपासना है। भगवान के राज्य में विनम्रता, सेवाभाव तथा धैर्य को मूल्यवान माना जाता है। परन्तु क्या हम सचमुच ही अपने जीवन में ये गुण विकसित कर रहे हैं? आधुनिक समझ के अनुसार ईश्वर एक फॉसिल है, विषय-भोग ही जीवन का सार-सर्वस्व है और स्वार्थ-सिद्धि ही जीवन का चरम लक्ष्य है। ऐसे विचार वाले लोगों ने जिस समाज या सरकार की रचना की है, उसे आध्यात्मिक जीवन के महत्त्व का कभी बोध नहीं हो सकता। राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सरकार करोड़ों रुपये खर्च करती है, पर बड़ा अच्छा होता यदि वह इसके साथ-ही-साथ ऐसे भी उपाय करती जिससे लोगों में घृणा, भय और ईर्ष्या का बीजारोपण न हो और आपसी प्रेम एवं सौहार्द्र को बल मिले। यह एक अत्यन्त रचनात्मक योजना होती। क्रोध रूपी विष का नाश करने में यह एक बड़ा सशक्त हथियार सिद्ध होगा।

एक पवित्र स्मृति :

भारत की इस पुण्यभूमि में मातृत्व के आदर्श का अनुसरण करने वाली और चन्दन के समान त्याग व सेवा में अपना जीवन मिटा देने वाली असंख्य नारियाँ हैं। सन्तान को जन्म देने मात्र से ही कोई नारी आदर्श माँ नहीं बन जाती। आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में ही ऐसे मातृत्व का विकास होता है। नि:स्वार्थता के शिखर पर आरोहण करने वाले ऐसे महान लोग सत्य के साधकों के लिए चिर प्रेरणा के स्रोत हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक श्री डी.वी. गुण्डप्पा द्वारा कन्नड़ में लिखित 'भगवद्गीता-तात्पर्य' एक लोकप्रिय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को लेखक ने एक महिला के नाम समर्पित किया है। उक्त पुस्तक में इस महिला के जीवन के माध्यम से ही गीता के संदेश को बड़े सुन्दर ढंग से समझाया गया है। आइए हम लेखक के ही शब्दों को सुनें-'यह ग्रन्थ मेरी छोटी बहन लक्ष्मी-देवम्मा को समर्पित है, जिसने शान्त-भाव से बाल-वैधव्य को भाग्य-विधान के रूप में स्वीकार किया; जिसने भगवद्भक्ति के सहारे एक आध्यात्मिक जीवन बिताया और वृद्धों व अपंगों की सेवा, अनाथों की देखभाल तथा गरीबों की मदद के द्वारा अपने जीवन की सारी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की और हमारे लिए एक पवित्र स्मृति छोड़ गयी।'

हमारे देश में 'त्याग और सेवा' थोपे जाने वाले गुण नहीं, अपितु समर्पण की भावना से स्वेच्छापूर्वक स्वीकृत एक उच्च आदर्श की साधना है। भगवान से अटल विश्वास तथा दृढ़ समर्पण-भाव के बिना ऐसे आदर्श का अनुसरण कभी सम्भव नहीं।

ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन करने को ही ज्ञान, बुद्धि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सूचक मानने वाले आज के शिक्षित लोग क्या कभी ऐसे आदर्श की महानता को समझ सकेंगे? क्या वे कभी इसमें रुचि ले सकेंगे? भले ही वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करें, भले ही उन्हें यह विचार पसन्द न हो, पर सत्य तो सदा सत्य ही रहेगा। हम अपनी सनक और रुचि के अनुसार इसे बदल नहीं सकते।

इस देश के ऋषि-मुनियों को यह अनुभूति हुई थी कि ईश्वर या इस विश्व की आदि शक्ति को असंख्य पथों द्वारा पाया जा सकता है और उन्होंने जगत में इस सत्य का प्रचार किया था। हमारे इस युग में भी श्रीरामकृष्ण देव ने इस आदर्श का अनुसरण करके परमात्मा की अनुभूति की, अपने शिष्यों का मार्गदर्शन किया और आध्यात्मिक जीवन के सत्य को पुनः स्थापित किया। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'ईश्वर की उपासना पिता के रूप में की जा सकती है। ईश्वर की उपासना माता के रूप में भी की जा सकती है। माता के रूप में उपासना करके हम शीघ्र भक्ति लाभ कर सकते हैं। सख्य या दास्य भाव से ईश्वर की उपासना करके भी आध्यात्मिक रूप से उन्नति की जा सकती है।' उन्होंने कहा था, 'जितने मत उतने पथ'- भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों के लिये भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। 'परन्तु ईश्वर के चरणों में पहुँचने के लिये मातृरूप में ईश्वर की उपासना ही सरलतम तथा शीघ्रतम पथ है।' ईश्वर को माँ समझना और सभी मनुष्यों में जगदम्बा का ही दर्शन करना- यही सभी आध्यात्मिक साधनाओं का लक्ष्य है। श्रीरामकृष्ण देव ने अपने उपदेशों तथा आचरण के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मातृरूप में ईश्वर की धारणा दृढ़ हो जाने पर, मनुष्य सहज ही अपनी सभी सीमाओं को पार करके शीघ्र ही दिव्यता की उपलब्धि कर सकता है। **(क्रमशः)**

दुख तो जीवन का सबसे बड़ा रस है। जिसे जीवन में दुख नहीं मिला, उसे सुख की अनुभूति ही क्या होगी? जो स्वयं दुख का अनुभव करता है, वही दूसरे के दुख को पहचान सकता है।

– रघुवीरशरण 'मित्र'

विचार सरिता

(एक सम्प्रतिः लहरी)

– विचारक

आत्मा हमारा स्वभाव है, जिसे जानना मात्र है। आत्मा को खोजा नहीं जाता, खोजा तो उसे जाता है जो खो गया है। पाया भी उसे ही जाता है जो छूट गया है या बिछुड़ गया है। किसी ने ठीक ही कहा है–

खोया कहे सो बावरा, पाया कहे सो कूर।
खोया पाया कछु नहीं, चेतन है भरपूर।।

आप का होना यह आपका अस्तित्व है। आप हो इसकी यथार्थ अनुभूति पर्याप्त है। यदि आप अपने को इस स्थूलकायारूप मान रहे हो तो यह बहुत बड़ी भूल हो रही है। यह काया नहीं थी इससे पूर्व भी आप थे और यह स्थूल देह नहीं रहेगी, तब भी आपके होने में कोई अन्तर नहीं आएगा। जिसने आत्मा को जान लिया उसने ब्रह्म को जान लिया। वह सदा के लिये अजर, अमर, अविनाशी रूप से शुद्ध-बुद्ध हो गया।

सत्य स्वरूप, अपने अस्तित्व का दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होने के उपरान्त फिर करना कुछ शेष नहीं रह जाता। सब भ्रान्तियाँ मिट जाती हैं, सभी बन्धन टूट जाते हैं, इसी का नाम मुक्ति है। अज्ञानी जन क्रिया में विश्वास करते हैं और अभ्यास द्वारा इन बन्धनों को काटना चाहते हैं। चूंकि बन्धन वास्तविक नहीं हैं, भ्रम मात्र है, अज्ञान के कारण है इसलिए क्रिया अनावश्यक है। यह सारा भ्रम अज्ञानजन्य है। ज्ञान होने के उपरान्त बन्धन जैसी स्थिति का तत्काल अभाव हो जाता है। सद्ग्रन्थों में एक दृष्टान्त आता है कि बन्दर को पकड़ने के लिए मदारी लोग जंगल में जहाँ वानर-सेना का अधिक आना-जाना लगा रहता है, वहाँ पगडण्डी में गड्ढा खोदकर छोटे मुँह का एक घड़ा गाड़ देते हैं, उसका मुँह जमीन के बराबर खुला छोड़ देते हैं। उस घड़े में दो मुट्ठी चने डाल देते हैं। समय पाकर जब कोई बन्दर उस घड़े के चनों को देखता है तो चनों के लोभवसात अपने दोनों हाथों को अन्दर ले जाकर चनों से अपनी मुट्ठी बन्द करके बाहर खींचता है। चनों को छोड़ना नहीं चाहता और घड़े का मुँह छोटा होने से दोनों हाथ बाहर आ नहीं पाते। वह खूब ताकत लगाता है कि मेरे को भीतर में किसी ने बान्ध लिया है या पकड़ लिया है।

अब वह अपने ही भ्रम से वहाँ बन्धन मानता है तथा छूट नहीं पाता इतने में मदारी आकर उसके गले में जंजीर डाल देता है तथा जिन्दगी भर स्वच्छन्द विचरने वाले वानर को मदारी की आज्ञा से नये-नये नाच दिखाने पड़ते हैं। ऐसे ही यह जीवात्मा विषयों में आनन्द ढूंढ़ता है और आसक्तिवशात् निरबन्धन होते हुए भी बन्धन मानकर क्रिया कर्मों में व्यर्थ समय व्यतीत करता है।

जेवरी में सर्प की भ्रान्ति होते ही हम उस सर्प को भगाने के अनेकों उपाय करते हैं पर जब तक रस्सी का अर्थात् मिथ्या सर्प के अधिष्ठान का बोध नहीं होता तब तक सर्प का भय भी बना ही रहता है। चाहे हम अनेकों देवी-देवताओं को प्रसाद चढ़ाएँ पर सर्प के काटने का भय जाता नहीं है। ऐसे ही सर्व प्रपञ्च का अधिष्ठान ब्रह्म है, उस चेतन आत्मा का बोध जब तक नहीं होता है तब तक अज्ञानजन्य भ्रम व भ्रान्ति की निवृत्ति सम्भव नहीं है। जो नजदीक से नजदीक और हाजिरे हुजूर परमात्मा है उसे हम अपने ही अज्ञान के कारण दूर और अपने से बिछुड़ा हुआ मान रहे हैं। आत्मज्ञान के लिए करना कुछ नहीं पड़ता। करके आज तक कोई आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। बुद्ध ने छः वर्ष तक खूब किया किन्तु कुछ नहीं मिला। जब करना छोड़ा और स्व: में उतरना शुरू किया तब वह मिला जिसे पाने के बाद कुछ पाना शेष रहता ही नहीं है।

मिलने में समय भी नहीं लगता। समय तो उसमें लगता है जो मिला हुआ न हो और उसे ढूंढ़ना पड़े। मिले हुए की तो केवल स्मृति ही करनी है। जब मिलता है तो एकक्षण में मिलता है जैसे जनक को मिला, बुद्ध और

(शेष पृष्ठ 21 पर)

संघशक्ति/4 जून/2022

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

महाराजा हरबख्श पाल जी की मृत्यु 4 जून, 1838 ईस्वी को लम्बे शासनकाल के बाद बिना किसी को भी अपने उत्तराधिकारी के रूप में चुने हुई। इसने राज्य में भ्रम, दावे, जवाबी दावे और अराजकता की स्थिति उत्पन्न की। यह मामला राज्यों/महलों में सत्ता की राजनीति के गन्दे खेल का सबसे अच्छा उदाहरण है। पूरा घटना चक्र कछावा रानी के षड़यंत्र और प्रताप पाल के इर्द–गिर्द घूमता है, जो हाड़ौती राव अमीर पाल के पुत्र थे, और दिवंगत महाराजा के सबसे करीबी परिजन थे। स्वर्गीय महाराजा हरबख्श पाल की 3 पत्नियाँ थीं, सबसे बड़ी नरवर परिवार में कछावा जी, दूसरी राजावत जी (बसवा से) और तीसरी सबसे छोटी सिसोदिनी जी थीं। जब महाराजा हरबख्श पाल जी की मृत्यु हुई, तो वरिष्ठ रानी ने प्रताप पाल को अन्तिम संस्कार करने और राजकीय सम्मान के साथ सभी क्रियाकर्म करने के निर्देश भेजे। निकटतम परिजन प्रताप पाल होने के नाते इस निर्देश को अजीब भी नहीं माना गया।

दरबारियों और रईसों ने उन्हें मृत महाराजा के सबसे नजदीकी परिवार से होने के कारण उत्तराधिकारी के रूप में ही (गोद लिया हुआ नहीं) माना। बाद में, कुछ अज्ञात कारणों से स्थिति उलट गई, कछावा रानी ने घोषणा की कि सबसे छोटी रानी सिसोदिनी जी गर्भवती हैं। परम्परा अनुसार राज गद्दी सूनी नहीं रहती, इस आधार पर अंग्रेज सरकार ने प्रताप पाल को इस शर्त के साथ गद्दी पर बैठने की अनुमति दी कि यदि रानी को बच्चा होता है तो उसे गद्दी खाली करनी पड़ेगी। अब ब्रिटिश (भारत) सरकार के उप सचिव ने राजपूताने के AGG को दस्तूर के अनुसार खिलअत और सिरोपाव देने की अनुमति दी तभी तीनों रानियों ने AGG के यहाँ सीधे पत्र भेजकर आपत्ति दर्ज कराई और उस आधार पर गद्दीनशिनी का दरबार अग्रिम सूचना तक स्थगित कर दिया गया। रानियों के पत्र के उत्तर में AGG ने अपने सहायक के माध्यम से उत्तर दिया कि प्रताप पाल दिवंगत राजा के सबसे नजदीकी परिवार से एकमात्र पुरुष वारिस हैं और उसी आधार पर उन्होंने राजा हरबक्श पाल की मृत्यु उपरान्त किए जाने वाले कर्म पुत्रवत किए हैं, तथा उनके पाग दस्तूर के समय करौली राज के सभी प्रमुख चारों जागीरदार (अमरगढ़, हाड़ोती, इनायती और रामठरा) और अन्य लोग उपस्थित थे, साथ ही रानियों ने भी प्रताप पाल के सबसे नजदीकी होने पर कोई आपत्ति नहीं जताई है इसलिए अंग्रेज सरकार प्रताप पाल को ही वैधानिक उत्तराधिकारी मानती है। इसके साथ ही रानियों को यह भी निर्देश दिया गया कि भविष्य में पत्र व्यवहार राजा के माध्यम से ही किया जाए क्योंकि ब्रिटिश सरकार की यह परम्परा नहीं है कि जनाना महल से सीधे संपर्क रखा जाए।

इस पत्र के बाद बड़ी रानी ने एक नया पैंतरा खेला और यह घोषणा कर दी कि सबसे छोटी रानी सिसोदिनी जी गर्भवती है। बड़ी रानी की असल मंशा स्वर्गीय राजा के दूर के परिजन को गद्दी पर बिठाकर सारी शक्ति अपने हाथों में रखने की थी। उसके सलाहकारों में उसका भाई अजीतसिंह, चेला दीपसिंह और धाभाई भाई अमनसिंह व देवीसिंह थे। प्रताप पाल और उसके पक्ष ने यह दावा खारिज कर दिया और कहा कि यदि वह गर्भ से हैं तो कुछ ठिकानेदार और प्रमुख लोगों की स्त्रियों को महल में बुलाकर दिखाया जाए। बड़ी रानी ने यह तजवीज यह कहकर मना कर दी कि आने वाली स्त्रियों में से कोई भी गर्भिणी रानी को छुरा भोंक देगी और यह कहकर उसने उनके पक्ष की कुछ महिलाओं से कहला दिया कि वह सचमुच गर्भिणी है। इस सारे घटनाक्रम, तथा दावे और प्रतिदावों को देखते हुए भारत के लिए ब्रिटिश सरकार के सचिव ने नए AGG Lt. Col. सदरलैंड को 29 जनवरी, 1839 को निर्देशित किया कि वह स्वयं करौली जाए और रानी के गर्भ के दावे की जाँच जागीरदारों की महिलाओं अथवा आस पास की रियासतों से कुछ मुअज्जित महिलाओं

को भेज कर करे। जब कछावा रानी ने यह सुना तो उसने एक कदम आगे लेते हुए 31 जनवरी, 1839 को ही रानी के पुत्र जन्म की सूचना AGG को खरीता भेज कर दी कि रानी को पुत्र हुआ है और उसका नाम पृथ्वी पाल रखा गया है (विदेश विभाग 6 मार्च 1839/89/पीसी/एनएआई) लेकिन इसे स्वीकार नहीं किया गया और सत्ता हासिल करने की फर्जी योजना घोषित की गई, इस काल में महल और राजकोष बड़ी रानी ने अपने नियंत्रण में बनाए रखे।

दोनों पक्षों के नित्य हो रही हिंसक घटनाओं से परेशान प्रताप पाल मंडरायल के किले में चले गए, जहाँ उन्हें मंडरायल के किलेदार और वहाँ की गारद का समर्थन राज्य के प्रमुख ठिकानेदारों के साथ मिल गया। Lt. Col. सदरलैंड 12 फरवरी, 1839 को मंडरायल पहुँचा, उसी दिन प्रताप पाल आकर मिले, शिष्टाचार के अनुसार अगले दिन सदरलैंड प्रताप पाल से किले में जाकर मिले और उसके अगले दिन 14 फरवरी को दोनों करौली आए। वहाँ सदरलैंड बड़ी रानी से भी मिले और उनसे मातृत्व के सबूत पेश करने को कहा। कुल मिलाकर दस दिनों के प्रवास के बाद भी जब मामला नहीं सुलझा तो AGG वापस लौट गए। जब रानी कोई पुख्ता सबूत नहीं पेश कर पाई तब नवम्बर, 1840 को AGG के सहायक कैप्टन ट्रेवलयान को खिलअत और सिरोपाव देकर राजा के रूप में मान्यता देकर पूर्ण अधिकार संभलाने के लिए भेजा गया, जहाँ 21 दिसम्बर, 1840 के दिन करौली महलों में दरबार आयोजित कर प्रताप पाल को ब्रिटिश सरकार की ओर से सम्पूर्ण अधिकार दिए गए। रानी ने अपने वकील को कोलकाता गवर्नर जनरल के पास भी भेजा। लेकिन AGG ने 15 फरवरी, 1841 को प्रताप पाल के पक्ष में अपने फैसले पर अडिग रहते हुए रानी को सूचित किया कि ब्रिटिश सरकार पूर्ण जाँच के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि करौली रियासत की गद्दी का असली हकदार प्रताप पाल ही है। इस प्रकार दो साल से भी अधिक चले घटनाक्रम के बाद करौली को अधिकृत रूप से राजा मिले। Col. Walter की लिखी ''तुहफे राजस्थान'' के अनुसार बड़ी रानी कछावा जी और सिसोदनी जी अपने तथाकथित पुत्र को लेकर इस बीच भरतपुर चली गई जहाँ से उसके बाद उनका कोई पता ठिकाने का उल्लेख नहीं मिलता।

महाराजा प्रताप पाल के एक ही बेटी थी जिनका विवाह कोटा के महाराव के साथ हुआ था। इनका देहान्त 1849 ईस्वी में ला औलाद हुआ। **(क्रमश:)**

पृष्ठ 19 का शेष

विचार सरिता

महावीर को मिला। इसके लिए अपने आपकी सजगता एवं अपने होने का बोध-मात्र पर्याप्त है। जिसे खोया नहीं उसे ढूंढ़ना कैसा, जो भीतर मौजूद है उसकी तलाश कैसी, जो हमारा स्वभाव है उसके लिए प्रयत्न कैसा?

आत्मा स्वयं बोधस्वरूप है, स्वयं ज्ञान है, अपने आप में पूर्ण और शुद्ध स्वरूप है। हमने भूल से शरीर, मन, अहंकार आदि को हमारा स्वभाव मान लिया है जो भ्रान्तिमात्र है। मिथ्या भ्रान्ति को मिटाने का एक ही उपाय है और वह है अधिष्ठान का ज्ञान। अविद्या के कारण रजू में सर्प, मरुभूमि में जल, सीपी में रजत एवं दर्पण में नगर की प्रतीति होती है ऐसे ही मूलाविद्या के कारण आत्मा में जीवपना और ब्रह्म में सृष्टिपना है। जैसे रजू का ज्ञान होते ही मिथ्या सर्प की निवृति व मरु के बोध से जल की निवृति तथा सीपी के बोध से रजत की भ्रान्ति मिट जाती है तथा दर्पण के ज्ञान से उसके भीतर समाहित नगर की भ्रान्ति भाग जाती है ऐसे ही आत्मा के बोध से जीवभाव की भ्रान्ति मिट जाती है और जन्म-मरण रूप दु:ख से वह सदैव मुक्त हो जाता है। मुक्ति के लिए स्व के सागर में डुबकी लगाने की जरूरत है। तैरने के लिए अभ्यास करना पड़ता है, डूबने के लिए अभ्यास की आवश्यकता नहीं है, केवल छलांग मात्र लगाने का साहस चाहिए। आत्मज्ञान के लिए अभ्यास मात्र छोड़कर निश्चेष्ट भाव से अपने आपको समर्पित कर देना है। आगे अस्तित्व अपने आप सम्भाल लेगा। यही आत्मज्ञान है, यही मुक्ति है।

●

महाराणा प्रताप महान

– मोहनसिंह बम्बोरा

अतीत मानव का बहुत बड़ा मार्गदर्शक होता है। अतीत में झांककर वह अपना, अपने समाज और राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इसका अनुपम उदाहरण है प्रताप। सोनगरी जेवन्ताबाई की कोख से जन्म लेने वाले इस उदयमान नक्षत्र ने अपने पुरखों-बप्पा रावल, हम्मीर, महाराणा कुम्भा, महाराणा सांगा और अपने पिता उदयसिंह के उज्ज्वल व्यक्तित्व से प्रेरणा ली और यह दृढ निश्चय किया कि वह कभी आततातियों के आगे झुकेगा नहीं, संघर्ष कर उनसे लोहा लेता रहेगा, चाहे राज्य खोकर उसे वन-वन भटकना क्यों न पड़े। इसी प्रण को लेकर उसने राष्ट्र में स्वतंत्रता की ज्योति जगाई। उसी प्रकाश स्तम्भ ने आगे भारत माता के सपूतों को एवं विश्व के स्वतंत्रता प्रेमियों को राह दिखायी। भारत में स्वतंत्रता चेतना एवं राष्ट्रवादी भावना प्रताप की ऐतिहासिक विरासत है जो सदैव प्रेरणादायी रहेगी।

इतिहासकारों ने भगवान राम और प्रताप के जीवन में साम्यता देखी है। भगवान राम का राज्यारोहण होने वाला था परन्तु मन्थरा के षड़यंत्र से उन्हें चौदह वर्ष का वनवास भुगतना पड़ा। प्रताप का राज्यारोहण भी महाराजा उदयसिंह की मृत्यु के बाद होना ही था लेकिन महाराणा उदयसिंह के छोटे पुत्र जगमाल को मेवाड़ का महाराणा बना दिया गया। जैसे भगवान राम को गद्दी न मिलने से कोई दुख नहीं हुआ वैसे ही प्रताप को भी कोई दुख नहीं हुआ और अनावश्यक विवाद पैदा न हो इसलिए अन्यत्र जाने की तैयारी में लग गये। किन्तु मेवाड़ की जनता के प्रिय होने से सामन्तों ने उन्हें राज्य की गद्दी पर बैठाया।

राम ने चौदह वर्ष तक जंगलों में अपना जीवन बिताया तो प्रताप ने भी 25 वर्षों तक जंगलों, पहाड़ों, कन्दराओं, घाटियों में जीवन गुजारा। राम ने वनवास में आदिवासियों, वानरों, जंगली जानवरों के साथ रहकर, समानता का भाव रखकर जीवन यापन किया तो प्रताप ने भी 25 वर्ष आदिवासी, रावच, भील, मीणा, गरासिया आदि जातियों के साथ समरसता के भाव से जीवन यापन किया।

राम के वनवास काल में छोटा भाई लक्ष्मण हमेशा राम के सुख-दुख में साथ ही नहीं रहे, बल्कि रक्षक बनकर खड़े रहे। प्रताप के साथ भी महाराज वीरमदेव ने प्रताप के रनिवास की सुरक्षा की जिम्मेवारी संभाली। वनवास काल में पृथ्वी पर सोना, जंगली फल, अनाज आदि खाना, सुख को ठोकर मारकर राम ने जीवन यापन किया तो प्रताप ने भी अपने संघर्षकाल में वैसी ही परिस्थितियों में जीवन यापन किया। भगवान राम को जटायु जैसा पक्षी भी सहयोगी मिला तो पशु चेतक ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर प्रताप के प्राण बचाये। भगवान राम के वंशधर होने के कारण राम के गुणों का पालन मर्यादापूर्वक किया, इसीलिए इतिहासकार ने उन्हें 'प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप' कहा है।।

महाराणा प्रताप का राजतिलक गोगुन्दा की महादेव बावड़ी के कच्चे चबूतरे पर 28 फरवरी, 1572 ई. को हुआ। यह राजतिलक आम जनता व सामन्तों के द्वारा किया गया था क्योंकि प्रताप स्वतंत्रता, समानता, कौमी एकता, त्याग, बलिदान, अटूट देशभक्ति, शरणागत रक्षा, नारी-रक्षा, उदारता, सहिष्णुता, दयालुता, साहसी, निडर, दृढ प्रतिज्ञ, अथक परिश्रमी तथा भगवान एकलिंग के प्रति अटूट श्रद्धा के धनी थे। इन्हीं गुणों के कारण प्रताप को महान कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वर्तमान में कौमी एकता पर बल दिया जा रहा है, प्रताप ने तो 450 वर्ष पूर्व उस कौमी एकता को मूर्त रूप दिया था। सामाजिक समरसता भी प्रकट थी। सभी के अद्भुत सहयोग ने ही अकबर के मेवाड़ को झुकाने के सपने को पूरा नहीं होने दिया।

प्रताप ने नारियों के सम्मान और मर्यादा की क्षत्रिय परम्परा को पूरा निभाया। अब्दुल रहीम खानखाना के मेवाड़ अभियान के समय कुंवर अमरसिंह ने मुगल पड़ाव पर अचानक हमला कर उनके हरम की महिलाओं को गिरफ्तार कर लिया और सायरा मुकाम पर प्रताप के सामने उन्हें पेश किया तब अमरसिंह को लताड़ लगाते हुए प्रताप ने कहा कि यह क्षत्रियों का कर्म नहीं है और मुगल नारियों की पूरी सुरक्षा रखते हुए मुगल पड़ाव तक पहुँचाया। शत्रु पक्ष की नारियों के शील की रक्षा के लिए उन मुगल नारियों ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

18 जून, 1576 को हल्दीघाटी युद्ध हुआ। उस युद्ध में प्रताप का चेतक भी अमर हो गया। तीन टांगों पर भी अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा हेतु सुरक्षित निकालकर ले गया और स्वयं के प्राणों की आहुति दे दी। पशु भी अमर हो गया। जब-जब प्रताप का स्मरण होगा, चेतक भी स्मरण में आता रहेगा। अकबर ने आमेर के कुंवर मानसिंह को सेनापति बनाकर भेजा ताकि राजपूत आपस में लड़ें। प्रताप ने भी इस कुटनीति को समझा और दिल्ली के पूर्व सुल्तान शेरशाह सूरी के वंशधर को मेवाड़ की शरण में लेकर, हकीम खाँ सूरी को अपना सेना नायक बनाया। उसने हरावल में रहते हुए मुगल सेना की हरावल को ध्वस्त कर दिया, मुगल सेना भाग छूटी। वह साहसी वीर योद्धा था और अन्तिम सांस तक तलवार चलाता रहा। अपने प्राणों को मेवाड़ के लिए उत्सर्ग कर दिया पर मुगल उसके हाथ से तलवार नहीं छुड़ा पाये। उसको दफनाया भी तलवार सहित गया।

ग्वालियर के तंवर राजवंश को कभी भुलाया नहीं जा सकता। राजा रामशाह तंवर अपनी सेना, मय पुत्रों के हल्दीघाटी में लड़ा। अपने तीन पुत्रों सहित अपना बलिदान मेवाड़ के लिए दिया। अपने इस बलिदान से तंवर राजवंश भी अमर हो गया। जहाँ प्रताप की प्रशंसा होगी वहाँ रामशाह तंवर परिवार भी प्रशंसित बनेगा।

खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा की घायल अवस्था में मेवाड़ राजछत्र धारण कर बड़ी सादड़ी के झाला अज्जा ने युद्ध का नेतृत्व किया और अपने प्राणों की बलि दी। हल्दीघाटी युद्ध में उन्हीं के वंशज झाला मान ने प्रताप के मुगलों से घिर जाने पर उनका राजछत्र धारण किया और महाराणा को सुरक्षित निकाला तथा अपने प्राणों की आहुति दी। धन्य है झाला राजवंश। कहा है-

आ बापी झाला अजब, छत्र चमर सुरथांन।
सांगा सूं अजमल लिया, पातल सूं फिर मान।।

कविवर नाथूदान ने भी झाला मान की वीरता पर कहा है-

दीधा अर देसी घणा, मालक साथे प्राण।
चेटक पग दीघा जठे, सिर दीधा मकवाण।।

25 वर्षों के लम्बे स्वतंत्रता संग्राम में प्रताप को मेवाड़ की जनता द्वारा जो जन समर्थन मिला, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिला। कोई वर्ग ऐसा नहीं जिसने कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग न किया हो। हर घाटी, हर पहाड़, समस्त आडावल की जनता ने जन समर्थन दिया वैसा विश्व के इतिहास में देखने को नहीं मिलता। जैन भामाशाह, ताराशाह, जीवाशाह आर्थिक प्रबन्धन में ही नहीं, युद्ध में भी साथ रहे। मेवाड़ी चारणों ने मनोबल टूटने न दिया। भील, मीणा, गरासिया, रावच, मेर आदि जन जातियाँ भी साथ खड़ी रहीं। भील बाहुल्य पानरवा के सोलंकी राणा पुंजा ने युद्ध में महान वीरता प्रदर्शित करते हुए अपने प्राणों की आहुति दी। किसान वर्ग ने भी संघर्ष काल में अन्न पैदा नहीं किया ताकि मुगलों को अन्न न मिले। गाडिया लोहर युद्ध के लिए हथियार बनाते रहे और चित्तौड़ पुनः विजय न हो तब तक घुमक्कड़ जीवन यापन की कठिन प्रतिज्ञा ली। हकीम खाँ सूरी के साथ मुस्लिम सैनिक भी पीछे नहीं रहे।

मेवाड़ के न होते हुए भी हकीम खाँ सूरी, रामशाह तँवर, नारायणदास ईडर, जालोर का ताजखां, पाली का सोनिगरा परिवार (प्रताप का मामा पक्ष) आदि ही नहीं भावनात्मक समर्थन देने वालों में मारवाड़ के राव चन्द्रसेन, राव सुरताण सिरोही, राठौड़ पृथ्वीराज बीकानेर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ आदि अनेक शासक थे। यह प्रताप की महानता का ही द्योतक है।

प्रताप ने कभी अपने आपको शासक प्रकट नहीं किया। मेवाड़ की राजगद्दी का स्वामी भगवान एकलिंग नाथ है। प्रताप तो एकलिंग नाथ के दीवाण हैं। वे भगवान एकलिंग नाथ को कभी नहीं भूले। जिसका ईष्ट प्रबल होता है, उसका आत्मबल मजबूत होता है। प्रताप जीवन में जहाँ भी रहे भगवान एकलिंग नाथ की नित्य पूजा करते। कुम्भलगढ़ के परसुराम जी महादेव, रणकपुर घाटे में, वैश का मरु, जरगा महादेव, रोहिड़ागढ़ महादेव, कमलनाथ, देवलिया महादेव ओगणा में भगवान हरिहर मंदिर आदि जहाँ भी रहे, महादेव की सेवा करते रहे। तभी कहा है-'जो दृढ राखे धर्म को ताहि राखे करतार'।

प्रताप का जन्म वि.स. 1597 में हुआ। उनका स्वर्गवास सन् 1597 ई. में हुआ। यहाँ भी अंकों की साम्यता है।

प्रताप अपने चारित्रिक बल के कारण ही मेवाड़ की जनता के हृदय सम्राट के रूप में उभरे। भारतीय जनमानस ही नहीं विदेशी भी प्रताप को संघर्ष प्रणेता मानते रहे हैं। अकबर ने 7 बार शिष्ट मण्डल भेजा प्रताप को झुकाने के लिये पर प्रताप को नहीं लुभा सका। 1586 दिवेर विजय के बाद मेवाड़ पर 11 वर्ष तक कोई आक्रमण नहीं हुआ। अत: चावण्ड उनकी अन्तिम राजधानी बनी। प्रताप का जन्म कुम्भलगढ़ में, बचपन चित्तौड़ की तलहटी में, राजतिलक गोगुन्दा में और मृत्यु चावण्ड में प्रताप को युग अवतारी का रूप देते हैं।

क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना सन् 1946 में तनसिंहजी ने की थी। जब हम स्वर्गीय तनसिंहजी का कृतित्व व व्यक्तित्व समझते हैं तो स्पष्ट होता है कि उनमें क्षत्रिय दर्शन कूट-कूट कर भरा हुआ था। साथ ही अपने पूर्वजों के महान कार्यों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। मैं महसूस करता हूँ कि तनसिंहजी के तथा प्रताप के जीवन में बहुत कुछ साम्य है। वे आधुनिक युग के सच्चे क्षत्रिय थे, उनमें देश प्रेम, जाति प्रेम, दृढ निश्चय, चारित्रिक प्रबलता, आध्यात्मिकता, कर्तव्य निष्ठा, कर्मठता, नारी के प्रति सम्मान, अथक परिश्रम और विद्वता कूट-कूट कर भरी थी। इन्हीं सिद्धान्तों के बल पर उन्होंने श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की।

क्षत्रिय बालकों को संस्कारित कर उनके कर्तव्य ज्ञान का बोध करवाना संघ की स्थापना का मुख्य कारण रहा है। इसी से समाज सेवा, राष्ट्र सेवा तथा मानवता की सेवा फलीभूत होती है। दैनिक अभ्यास और शिविरों के माध्यम से क्षत्रियोचित गुणों का क्रियान्वयन किया जाता है। 1946 से लगातार अनेक उतार-चढाव के बावजूद संघ अपना निर्धारित कार्य करता आ रहा है। यहाँ भी वही बात लागू होती है-'जो दृढ राखे धर्म को ताहि राखे कतार'।

मुझसे नफरत करने वालों की संख्या बहुत है, पर यदि मैं स्वयं नफरत करने के फाटक बन्द न करूँ तो उनकी संख्या और भी अधिक हो जाए। मैं नफरत इसलिए नहीं करता कि हर व्यक्ति के विरोधी कारण को ठीक प्रकार समझ सकूँ। लेकिन नफरत करने वालों से सैंकड़ों गुणा वे लोग हैं, जो मुझे हृदय से चाहते हैं। यदि मैं प्रेम के फाटक बन्द न करूँ तो उनकी संख्या भी बहुत अधिक हो सकती है। पर मैं बन्द इसलिए करता हूँ कि मैं समझ सकूं कि उनके प्रेम का हेतु क्या है? जब तक हेतु समझ में नहीं आता, तब तक फाटक के बाहर ही खड़ा होकर उन्हें प्रतीक्षा करनी होती है।

– पू. तनसिंहजी

दो शब्द क्षत्रिय युवक-युवतियों के लिये

– गोविन्दसिंह कसनाऊ

किसी राष्ट्र की शक्ति उस देश का नेतृत्व और युवा वर्ग (आयु 15 वर्ष से 35 वर्ष) पर निर्भर करती है। मुझे गर्व होता है कि वर्तमान में हमारे देश के दोनों पक्ष मजबूत हैं। भारत में युवा वर्ग की संख्या विश्व में सर्वाधिक है, जो भारत को विश्व का प्रथम शक्तिशाली राष्ट्र बनाती है।

युवा वर्ग में टीन ऐज, (Teen Age-13 वर्ष से 19 वर्ष की आयु) व्यक्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था है। इसे किशोरावस्था (Adolescence) कहते हैं। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास अपनी चरम अवस्था पर होता है। कहा जाता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति में जोश अधिक परन्तु उसकी तुलना में होश कम होता है। यह अवस्था व्यक्ति के भविष्य का निर्धारण करती है। इस अवस्था में असावधानी से व्यक्ति कुसमायोजित (Maladjustment) हो जाता है।

मेरा क्षत्रिय युवक-युवतियों से अनुरोध है कि आप बड़ों के मार्गदर्शन में चलें। बड़ों को अपना आदर्श मानें। उन्हें पर्याप्त सम्मान दें तथा उनसे हृदय से आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयत्न करें। अपने से बड़े, अनुभव की अमूल्य धरोहर हैं। वो हमें सही मार्ग दिखाते हैं तथा लक्ष्य के मार्ग से विचलित होने से बचाते हैं। इससे हमारे समय तथा श्रम की बचत होती है।

जीवन में अपना ऊँचा लक्ष्य निर्धारित करें। क्षत्रिय के लिये कोई भी लक्ष्य प्राप्त करना असम्भव नहीं है। अपनी संपूर्ण ऊर्जा उस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु लगावें। सकारात्मक सोच विकसित करें। यदि आप किसी भी कारणवश लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहते हैं तब भी निराश न हों और अधिक मेहनत के साथ उच्च लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयोग करें क्योंकि क्षत्रिय कभी हार स्वीकार नहीं करते, सफलता आपको निश्चित मिलेगी।

कहते हैं-

''मंजिल उन्हीं को मिलती है, जिनके सपनों में जान होती है, पंखों से कुछ नहीं होता, हौंसलों से उड़ान होती है।।''

वर्तमान परिस्थिति को दोष नहीं दें, हमारे लिये परिस्थितियाँ यही रहेगीं, क्योंकि वर्तमान परिस्थिति के लिये हम ही दोषी हैं। इतिहास गवाह है कि हमारी आपसी फूट ही हमारे पतन का कारण रही है। अत: इतिहास से हमें शिक्षा लेनी चाहिए।

''संघे शक्ति: कलौयुगै'' (भावार्थ- कलयुग में संगठन में शक्ति होती है।) मुझे प्रसन्नता है कि वर्तमान में, सभी क्षत्रिय संगठनों का दृष्टिकोण सकारात्मक है। परन्तु क्षत्रिय समाज का भविष्य आप हैं। अत: क्षत्रिय समाज की मणियों को एक माला का रूप देने का कार्य आपका है, इसके लिये लगातार प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

वर्तमान परिस्थिति को बदलना आसान नहीं है। महान वैज्ञानिक डार्विन ने लिखा है- ''Survival of the Fittest'' (योग्यम की उत्तरजीविता) अर्थात अपने आपको वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल बनावें। दूसरों की तुलना में अधिक मेहनत करके दूसरों से अपने को योग्य सिद्ध करें।

जो भी रोजगार मिले, उसे प्राप्त कर आत्मनिर्भर बनें। अवसर को बेकार नहीं जाने दें। किसी भी कार्य को तुच्छ नहीं समझें। हमारे देश के प्रधानमंत्री यदि रोड़ पर झाड़ू लगा सकते हैं, तब हमें राष्ट्र के किसी भी कार्य को करने में संकोच नहीं करना चाहिए। असफल युवक-युवतियाँ अपने भाग्य को दोषी मान लेते हैं, मेहनत भाग्य की रेखाओं को बदल देती है। अपने प्रयास को निरंतर बनाये रखें। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन अपने जीवन में 29 बार चुनाव हारे, परन्तु उन्होंने प्रयास जारी रखा तथा 30वीं बार अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव जीते। अत: असफलता का कारण ढूंढ़ें, उसे दूर करने का पुन: प्रयास करना चाहिए।

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिये अधिक समय दें। कक्षा 12 उत्तीर्ण करने के बाद ही प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में लग जायें। समय को व्यर्थ न जाने दें। कहते हैं ''समय पीछे से गंजा होता है।'' समय को आगे से पकड़ लेते हैं, तब आगे वाले बाल होने के कारण वश में आ जाता है परन्तु यदि समय आगे निकल जाता है तो उसे पीछे से पड़कने के लिये बाल नहीं हैं। अत: क्षत्रिय युवक-युवतियों से समय का सदुपयोग करने का आग्रह करता हूँ।

प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल होने के लिये प्रबल इच्छा का होना आवश्यक है। लक्ष्य प्राप्ति की जितनी प्रबल इच्छा होगी, उस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास भी उतना ही अधिक होगा। मस्तिष्क को एकाग्र करने की क्षमता में वृद्धि होगी।

जिस परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं, उसके पाठ्यक्रम को समय को मद्देनजर रखते हुए, खण्डों में विभाजित कर तैयारी करें। अच्छी पुस्तकें पढ़ें। अच्छी पुस्तकें प्रेरणा की स्रोत होती हैं। योग्य तथा अनुभवी शिक्षकों का सान्निध्य प्राप्त करें। उनके मार्गदर्शन पर विश्वास रखें। प्रतियोगी परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिये आपके द्वारा की गई तैयारी का मूल्यांकन (Evaluation) निरंतर शिक्षकों द्वारा करवाएँ तथा त्रुटियों को दूर करें। स्वयं द्वारा की गई तैयारी पर विश्वास रखें। आत्मबल को कम नहीं होने दें, क्योंकि आत्मबल सभी प्रकार के बलों में सर्वोपरि है। विश्व के जितने भी महान व्यक्ति हुए हैं, वे जन्म से नहीं, कर्म से अर्थात् मेहनत से महान बने हैं। समृद्ध भाषा राजस्थानी का दोहा है-

मेहनत कर रे मानवी, मेहनत राखे मान।
बिन मेहनत रीझें नहीं, गुरु, धणी भगवान।।

क्षत्रिय समाज में प्रतिभाओं की कमी नहीं है। प्रत्येक क्षेत्र में क्षत्रियों ने अपना वर्चस्व स्थापित किया है। राजस्थान प्रशासनिक सेवा परीक्षा, 2018 में कुल 60 से अधिक तथा उनमें से 10 से अधिक क्षत्रिय युवक-युवतियों ने प्रथम 100 योग्यताधारियों में अपना स्थान बनाया है। मैं उनकी मेहनत को नमन करता हूँ।

रोजगार प्राप्त करने के उपरान्त परिवार, क्षत्रिय समाज तथा राष्ट्र की उन्नति का दायित्व आपका बढ़ जाता है। राष्ट्रहित क्षत्रिय के लिये सर्वोपरि होता है।

क्षत्रिय समाज में व्याप्त बुराइयाँ यथा- टीका लेना, दहेज लेना, विवाह में अत्यधिक धन खर्च करना, शराब तथा अन्य उत्तेजक तथा मादक पदार्थों का सेवन करना, मृत्युभोज तथा अन्य बुराइयों का आप डटकर विरोध करें। क्षत्रिय युवक-युवतियों से अपनी रक्षार्थ क्षत्रिय धर्म की शिक्षा लेना आवश्यक मानता हूँ।

अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखें, शारीरिक विकास पर विशेष ध्यान दें। मानसिक विकास के लिये शारीरिक विकास आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि आप क्षत्रिय समाज की तस्वीर बदलने में क्रांतिकारी कदम उठायेंगे और सफल होंगे।

●

आशा मद है, निराशा मन का उतार। नशे में हम मैदान की तरफ दौड़ते हैं, सचेत होकर हम घर में विश्राम करते हैं। आशा जड़ की ओर ले जाती है, निराशा चैतन्य की ओर। आशा आँखें बन्द कर देती है, निराशा आँखें खोल देती है। आशा सुलाने वाली थपकी है, निराशा जगाने वाला चाबुक।

– मुंशी प्रेमचन्द

शौर्य दिवस

– कुँ. प्रतापसिंह तलावदा

ऐतिहासिक हल्दीघाटी–खमणोर युद्ध

18 जून, 1576 ई. के दिन मुख्य ध्येय स्वतंत्रता और स्वाधीनता के उद्देश्य को लेकर विश्व प्रसिद्ध हल्दी घाटी युद्ध लड़ा गया था। यह युद्ध मेवाड़ के सभी वर्गों एवं समुदायों के वीर योद्धाओं के साथ जन–जन के त्याग, पराक्रम और शौर्य के परीक्षा की घड़ी थी। इस युद्ध के परिणाम ने मुगल आक्रान्ता अकबर के संसाधनों के साथ शक्तिबल और सामर्थ्य के अहंकार को चकनाचूर कर धराशायी कर दिया। इस युद्ध ने मुगल आक्रान्ता अकबर के भारत सम्राट बनकर, सम्राट का ताज पहनने से पहले ही उसके स्वर्णिम ताज में लोहे की कील ठोंक कर अकबर को हीन भावना से ग्रसित होने का अहसास करा दिया कि– हे अकबर! मेवाड़ी मानवीय नैतिक मूल्यों के समक्ष तेरी विशाल सत्ता का बल और तेरे साधन संपन्न होने के कारण झूंठे अहंकार के चलते तेरा भारत सम्राट बनने का सपना एक विदेशी आक्रान्ता तथा लुटेरे से अधिक कुछ भी नहीं है।

उपरोक्त विश्लेषण को सही अर्थ में समझने के लिये हमें अकबर द्वारा 1567–68 ई. अक्टूबर–नवम्बर में चित्तौड़ दुर्ग की घेराबंदी, नृशंस कत्ले–आम जैसे घटनाक्रम को समझना होगा। इस दौरान मेवाड़ के लगभग 40000 (चालीस हजार) नर–नारियों को अपने शील, स्वाभिमान, स्वतंत्रता की रक्षा के निमित्त आत्मोत्सर्ग कर जीवन न्योछावर करना पड़ा। उपरोक्त युद्ध के कारण मेवाड़ की सामरिक शक्ति, संपन्नता तथा जन धन की भारी क्षति हुई। उक्त परिस्थितियों के चलते मेवाड़ राजपरिवार सहित आम जनता को मैदानी इलाकों को छोड़कर गिरि, पहाड़ों में बसेरा कर ठोकरें खाने को मजबूर होना पड़ा। उपरोक्त भारी विपत्तियाँ उपस्थित होते हुए भी मेवाड़ का रणबांकुरा जन समुदाय स्वतंत्रता, स्वाधीनता और स्वाभिमान के लिए भावी संघर्ष करने हेतु एक परिवार की तरह एकजुट रहा, यह कोई सामान्य बात नहीं थी। मेवाड़ के जन–जन का ऐसा नैतिक साहस केवल और केवल हमारी भारतीय सनातन संस्कृति के संस्कारों और नैतिक मूल्यों का मेवाड़ के मानव समाज में विद्यमान होना ही प्रमुख कारण था। इस पूरे संघर्ष के संक्रमण काल से यह ज्ञात होता है कि धर्म का भाव करुणा और सहिष्णुता में ही निहित है। अतः हमें सहिष्णुता के साथ मानवीय सद् व्यवहार के साथ ही जीवन जीना चाहिए। तुच्छ, स्वार्थपरक, अतिवादी संकीर्ण मानसिकता से बचे रहने का भरसक प्रयास करते रहना चाहिए।

महाराणा प्रताप और मेवाड़ के जन–जन ने विपत्ति, संघर्ष तथा सांस्कृतिक संक्रमण काल में भी इसी मानव धर्म के मार्ग का अनुसरण करते हुए, विदेशी आक्रान्ता अकबर के साथ जीवन भर संघर्ष किया। देखा जाए तो वर्तमान भारतवर्ष का तथाकथित लोकतंत्र भी कमोबेश वैसी ही अतिवादी, संकीर्ण, तुच्छ स्वार्थपूर्ण सांस्कृतिक संक्रमण काल से गुजर रहा है, जहाँ लोकोपकार, सहिष्णुता और मानव नैतिक मूल्यों का अभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

18 जून, 1576 ई. को प्रातःकाल में मेवाड़–मुगल सेनाएँ अपने–अपने मोर्चे पर डटी हुई थी। रणनीति के तहत मेवाड़ का सैन्य दल घाटी के मुहाने पर मुगल सेना के द्वारा आक्रमण करने का इंतजार कर रहा था। लेकिन सूर्योदय के एक घण्टे बाद तक आक्रमण नहीं करने की स्थिति में महाराणा प्रताप अपने 3000 तीन हजार घुड़सवारों को दो भागों में विभाजित करते हुए आक्रमण करने हेतु आगे बढे। रणनीति के तहत घाटी के मुख्य मुहाने से हरावल और महाराणा प्रताप के मध्य भाग के दस्ते को आगे बढना था तथा बांई तरफ की छोटी पहाड़ी के पीछे से हकीम खाँ सूर और बांये पार्श्व को आगे बढना था। हकीम खाँ सूर के लड़कों की टोली छोटी पहाड़ी की तरफ से मुहाने की तरफ आगे बढ ही रही थी कि अकस्मात ही मुगल सेना के हरावल दस्ते के मध्य भाग,

जिसका नेतृत्व आसफ खाँ कर रहा था, से भिड़न्त हो गई। ज्यों ही हकीम खाँ सूर के लड़कों और साथ चल रहे बांये पार्श्व के सैनिकों ने एक साथ मुगल सेना के हरावल और मध्य भाग पर प्रहार किया मुगल सैन्य विन्यास बिखर गया, इसी दौरान महाराणा प्रताप और मेवाड़ के हरावल दस्ते ने मुगल सेना के बांये पार्श्व पर भयंकर प्रहार किया। इस प्रकार मेवाड़ की सेना के पहले ही प्रहार से मुगल सेना का हरावल, मध्य और बांया पार्श्व सैन्य बल बिखर कर भागने को मजबूर हो गया। मेवाड़ की सेना का प्रहार इतना भीषण और भयंकर था कि मुगल सेना हल्दी घाटी के मुहाने से 8-10 किलोमीटर दूर भाग खड़ी हुई। युद्ध के प्रारम्भिक दो घण्टों में मुगल सेना को भागते हुए पराजय का सामना करना पड़ा। मुगल सेना के मध्य और बांया पार्श्व के सैनिक मेवाड़ की सेना के तीव्र आक्रमण के सामने नहीं टिक सके। किन्तु मुगल सेना के बांये पार्श्व के सैयद सैनिक हकीम खाँ सूर के अफगान लड़ाकों और राजपूत सैनिकों के आगे युद्ध में डटे रहे। दूसरी तरफ पीछे की ओर भागती हुई मुगल सेना का पीछा करते हुए महाराणा प्रताप और मेवाड़ का सैन्यदल मुगल सेना के मध्य भाग, जहाँ आमेर का कुंवर मानसिंह हाथी पर सवार था, लड़ते हुए वहाँ तक पहुँच गए। अब हल्दी घाटी के मुहाने से दो तीन किलोमीटर दूर, युद्ध प्रारम्भ होने के लगभग दो घण्टे बाद प्रथम चरण का युद्ध समाप्त हो कर दूसरे चरण में प्रवेश करता है।

इस प्रकार कुंवर मानसिंह पर खतरा मंडराते देखकर माधोसिंह के कच्छवाह सैनिकों ने मानसिंह के रक्षार्थ उसके ईर्द-गिर्द सुरक्षा घेरा बना लिया। यहाँ ध्यान देने की विशेष बात यह है कि कच्छवाह माधोसिंह के साथ यहाँ पर बहलोल खाँ मौजूद था, जिसे प्रारम्भिक इतिहासकारों ने तथ्यों के अभाव में दिवेर युद्ध में उपस्थित होना बताया है, जिसका तथ्यों के आधार पर निराकरण हो चुका है।

महाराणा प्रताप मानसिंह के ईर्द-गिर्द की घेराबंधी को तोड़ने के लिए आगे बढ़े तो रामशाह तंवर का माधोसिंह कच्छवाह से व महाराणा प्रताप का बहलोल खाँ से सामना हो गया। रामशाह तंवर के हमले से माधोसिंह का एक हाथ कट गया, लेकिन रामशाह तंवर मारे गए। हाथ कट जाने से माधोसिंह भी ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रहा। तो दूसरी तरफ महाराणा प्रताप ने अपनी तलवार के एक ही वार से बहलोल खाँ को सिरत्राण से लेकर घोड़े तक दो फाड़ करते हुए उसका अन्त कर दिया। उसके बाद महाराणा प्रताप ने हाथी पर सवार मानसिंह पर घातक प्रहार किया, उससे हाथी का महावत मारा गया, मानसिंह ओदे में पीछे खिसक जाने की वजह से बच गया। तथा हाथी की सूंड में तलवार के वार से चेटक के पिछले पैर में घातक घाव लग गया। इस समय पूरी मुगल सेना चारों तरफ से महाराणा प्रताप पर टूट पड़ी तथा इस समय भागती हुई मुगल सेना पुन: इकट्ठा होना शुरू हो हुई। इस वक्त तक मेवाड़-मुगल दोनों सेनाओं का सैन्य विन्यास भंग होकर आमने-सामने हो चुका था। उपरोक्त घटनाक्रम के चलते महाराणा प्रताप के प्राणों की रक्षा के निमित्त उन्हें युद्ध क्षेत्र के मध्य से बाहर निकालना आवश्यक हो गया था। महाराणा प्रताप कई घाव लगने के उपरान्त भी युद्ध क्षेत्र से बाहर दूर नहीं जाना चाह रहे थे। लेकिन मेवाड़ के भावी युद्ध संघर्ष को जीवन्त रखते हुए धार देने के लिए यह कूटनीतिक कृत्य आवश्यक था। इसके महत्त्व को समझते हुए झाला मान ने इसे अपना कर्तव्य समझ कर अप्रत्याशित साहसिक कदम उठाते हुए महाराणा प्रताप को युद्ध क्षेत्र से बाहर दूर निकल जाने के लिये मजबूर कर दिया। झाला मान ने हकीम खाँ सूर को महाराणा प्रताप के घोड़े चेटक की वाग पकड़ कर मोड़ने तथा भामाशाह को महाराणा प्रताप के पीछे सुरक्षा कवच प्रदान कर युद्ध क्षेत्र से बाहर निकालने का हुकम दिया। यहाँ तक युद्ध चलते हुए लगभग चार घण्टे का समय व्यतीत हो चुका था, तथा यह युद्ध के दूसरे चरण का अन्त था।

महाराणा प्रताप के युद्ध क्षेत्र से बाहर निकलते ही युद्ध के तीसरे चरण की शुरुआत हो गई थी। दूसरे चरण तक भी युद्ध क्षेत्र में मेवाड़ के योद्धाओं का पलड़ा भारी था।

तीसरे चरण का युद्ध हल्दी घाटी के मुहाने से पाँच छह किलोमीटर दूर बनास नदी के किनारे खमणोर के मैदानी खुले भाग में लड़ा गया था, जो आजकल रक्त तलाई के नाम से विख्यात है। मेवाड़ सैन्य बल के लिए तीसरे चरण का युद्ध भीषण प्रहारों के साथ करो या मरो की अवधारणा पर लड़ा गया। मुगल सैन्य दल के सामने मेवाड़ का सैन्य दल संख्या में बहुत कम था। अन्तिम तीसरे चरण का युद्ध हल्दी घाटी के मुहाने से पाँच छह किलोमीटर दूर बनास नदी के किनारे के पास 5 घण्टे (मध्याह्न समय) तक चला। देखा जाए तो इस पूरे लगभग पाँच घण्टे के युद्ध में मेवाड़ की सेना मुगल सेना पर हावी रही। युद्ध जैसे-जैसे आगे बढ़ा वैसे-वैसे आगे बढ़ती रही, मुगल सेना पीछे हटती गई, जिसका अन्त रक्त तलाई में हुआ।

इस प्रकार हल्दी घाटी युद्ध के अन्त तक की परिस्थितियों का तथ्यों के आधार पर विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि अहंकारी विदेशी आक्रान्ता मुगल अकबर के संसाधनों का सामर्थ्य और सैन्य बल की शक्ति का पराक्रम महाराणा प्रताप और मेवाड़ के जन-जन के त्याग, शौर्य और साहस के सामने तुच्छता के साथ छिन्न-भिन्न हो गया।

18 जून, 1576 ई. का हल्दी घाटी युद्ध सनातन संस्कृति की स्वतंत्रता, स्वाधीनता, स्वाभिमान, शौर्य और साहस के साथ-साथ मानवीय नैतिक मूल्यों के संरक्षण का एकमात्र अनूठा उदाहरण है।

इस युद्ध ने अभी तक जो व्यक्ति राणा कीका के नाम से विख्यात था, उसे प्रात: स्मरणीय जन नायक महाराणा प्रताप बना दिया तो दूसरी तरफ झाला वीदा द्वारा महाराणा प्रताप के प्राणों को बचाने के लिए बार-बार सुझाव देने पर भी राणा के नहीं मानने पर, राणा के आदेश और इच्छा की अवहेलना कर उन्हें युद्ध क्षेत्र से बाहर निकाला और अपने प्राणों की आहुति दी। इस प्रकार महाराणा प्रताप के मना करने पर भी नहीं माने वो मान, लेकिन बार-बार मना करने पर भी नहीं माने तथा मनाई की अवहेलना करे, वो मन्ना?

इस प्रकार हल्दी घाटी युद्ध ने राणा कीका को अपने शौर्य और साहस के बलबूते पर प्रताप बना दिया तो दूसरी तरफ झाला वीदा को झाला मान और झाला मन्ना के नाम से विख्यात कर दिया।

विदेशी मुगल आक्रान्ता अकबर के साथ सनातन संस्कृति के संवाहक मेवाड़ के जन-जन का युद्ध अक्टूबर-नवम्बर, 1567 ई. में चित्तौड़ दुर्ग की घेराबंदी से ही प्रारम्भ हो गया था। हल्दी घाटी के संग्राम ने आक्रान्ता अकबर को यह अहसास करा दिया था, कि जन-जन और धन-बल के सहारे कभी युद्ध नहीं जीते जा सकते हैं। हल्दी घाटी युद्ध के बाद अकबर अपने पूरे जीवन काल में मेवाड़ की चारों तरफ घेराबंदी जैसे मालवा, गुजरात, आबू, जालौर, सिरोही, सिवाणा, मारवाड़, नागौर, मेड़ता, बून्दी, मेवाड़ के पूरे मैदानी भाग की घेराबंदी के बावजूद मरते दम तक मेवाड़ विजय का सपना देखता रहा पर असफलता ही हाथ लगी। अंततोगत्वा अकबर के निर्विवाद भारत सम्राट का सपना उसके जीवन के अन्त के साथ ही धराशायी हो गया। ●

आध्यात्मिक उन्नति के सम्बन्ध में बातें बहुत कम होनी चाहिए और प्रयत्न बहुत ज्यादा। थोड़ी सी सिद्धि पाकर, जिसे सिद्धि भी कहना ठीक होगा या नहीं, उसी से अपने आपको सिद्ध पुरुष घोषित करना, न उस व्यक्ति के लिये ठीक है और न सुनने वालों के लिये, क्योंकि इससे सुनने वालों में मानसिक दुर्बलता आती है और अपने आप में भ्रम।

– पू. तनसिंहजी

महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा

– भँवरसिंह मांडासी

राव गोपालसिंह का जन्म चूण्डावत राणी गुलाब कंवर जी के गर्भ से विक्रमी संवत 1930 कार्तिक बदी 11 गुरुवार तद्नुसार 19 अक्टूबर, 1873 ई. को हुआ था। उस समय उनके पिता माधोसिंहजी कुंवर पद में थे। उनकी पत्नी चूण्डावत जी करेड़ा (मेवाड़) के राव भवानीसिंह की पुत्री थी। कुंवर गोपालसिंह बारह वर्ष की आयु में ही घुड़सवारी और बन्दूक चलाने में सिद्धहस्त हो चुके थे। साहस एवं निर्भीकता के वे पुंज थे। ये गुण उन्हें विरासत में मिले थे, अत: उनमें इनका सहज विकास स्वाभाविक था। उसी आयु में उन्हें शिक्षा प्राप्ति हेतु अजमेर के मेयो कॉलेज में प्रवेश दिलाया गया। उससे पूर्व वयोवृद्ध पं. शिवलाल तिवाड़ी ने उन्हें घर पर ही अक्षर बोध कराया और धार्मिक आचार विचारों की शिक्षा दी।

इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत साम्राज्ञी की उपाधि एवं राजमुकुट धारण करने के बारह वर्ष पश्चात राजपूताना के ए.जी.जी. कर्नल सी.के.एस. वाल्टर ने राजपूताना के राजकुमारों की शिक्षा के लिए अजमेर में एक विशिष्ट एवं उच्च स्तरीय शिक्षण संस्थान स्थापित करने का सुझाव रखा। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने उक्त सुझाव के महत्त्व को समझा। वायसराय लार्ड मेयो ने 22 अक्टूबर, 1870 ई. को अजमेर में आयोजित दरबार में उपस्थित महाराजाओं, राजाओं एवं सामन्त ठाकुरों के सामने उक्त योजना रखी और उनसे उक्त महान कार्य के निमित्त चन्दा देने की पुरजोर अपील की। अन्त में सन् 1875 ई. में राजस्थान के हृदयस्थल अजमेर नगर में भव्य एवं विशाल शिक्षण संस्थान की स्थापना हुई। तत्कालीन वायसराय लार्ड मेयो के नाम पर इसका नाम मेयो कॉलेज रखा गया।

सन् 1885 ई. में कुंवर गोपालसिंह को इसी ख्यातनाम संस्था मेयो कॉलेज में प्रवेश दिलाया गया। वहाँ वे छ: वर्ष ही अध्ययन कर पाये थे कि वि.सं. 1948 में सहसा उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया। उस समय उनकी आयु 18 वर्ष हो चुकी थी। इससे एक वर्ष पूर्व ही वि.सं. 1947 में उनका विवाह उत्तरप्रदेश की शिवगढ़ रियासत के गौड़ राजा की राजपुत्री के साथ सम्पन्न हो चुका था।

वि.सं. 1948 फाल्गुन कृष्णा 12 को उनकी माता राणी चूण्डावत जी का अल्पकालीन रुग्णता के पश्चात देहान्त हो गया। बीमारी की अवस्था में अपनी माता के अन्तिम दर्शन करने का उन्हें अवसर नहीं मिला। माताजी की मृत्यु होने पर ही उन्हें मेयो कॉलेज अजमेर से खरवा बुला लिया गया। नवयुवा कुं. गोपालसिंह के मन पर इस घटना से गहरा आघात लगा। माता के अन्तिम दर्शन न कर पाने का उन्हें जीवन भर पश्चाताप बना रहा। समय पर सूचना भेजकर उन्हें खरवा समय पर न बुलाने का सारा दोष खरवा राज्य के तत्कालीन दीवान पर डाला गया। प्रधान दीवान पद पर उस काल में जोशी किशनलाल (पुष्करणा) नियुक्त थे। तभी से जोशी और कुं. गोपालसिंह के मध्य तनातनी और विरोध प्रारम्भ हुआ। इसी प्रसंग को लेकर पिता राव माधोसिंह से भी खटपट शुरू हो गई।

घर से प्रस्थान– तेज एवं उग्र स्वभाव कुं. गोपालसिंह मेयो कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर मंडावा (शेखावाटी) के ठाकुर अजीतसिंह के पास जयपुर चले गये। वे रिश्ते में गोपालसिंह के फूफा लगते थे। मंडावा भवन जयपुर के अल्पकालिक निवास के समय नवयुवा कुं. गोपालसिंह ने एक रोज वहाँ पर आयोजित शेखावतों की एक मीटिंग का दृश्य देखा। वहाँ पर वे सब अपने स्वत्वाधिकारों की रक्षा के मसले पर विचार-विमर्श करने हेतु इकट्ठा हुए थे। बड़े हॉल में फर्श पर बिछी एक लम्बी-चौड़ी जाजम पर बड़े छोटे का भेद भुलाकर, ताजीमी और गैर ताजिमी का विचार दिमाग से निकाल कर, बराबरी के भाईचारे की भावना से वे सब उस जाजम पर बैठे हुए थे। उनमें जो पहले आया, आगे जा बैठा, देर से आया तो पीछे जहाँ जगह मिली वहाँ जा बैठा। परस्पर समानता के उस

अभूतपूर्व दृश्य को देखकर स्वतंत्र चेता कुं. गोपालसिंह भावविभोर हो उठा। समान बंधुत्व की उस अनूठी भावना ने उनके मन मस्तिष्क को आंदोलित कर डाला। खेतड़ी के राजा अजीतसिंह बहादुर को भी उन्होंने सर्वप्रथम वहीं पर देखा, जो जरा देर से आये थे और आते ही जहाँ जगह दिखी, एक किनारे पर जा बैठे। राजाजी के व्यक्तित्व की महत्ता और भाइयों के साथ बरती सादगी ने भी खरवा के उस नवयुवक कुंवर को अत्यधिक प्रभावित किया था। अपने जीवन के क्रांतिकारी काल में भी राव गोपालसिंह खरवा शेखावतों के संगठन और समान भाईचारे की भावना की मुक्त कंठ से प्रशंसा किया करते थे। जयपुर में गोपालसिंह अधिक समय तक नहीं रुक सके। चार माह बाद वे अजमेर चले आए व बड़ली ठाकुर की हवेली में रहने लगे। पूरे एक वर्ष अजमेर में रहने के पश्चात् वि.सं. 1949 में अपनी पत्नी और सेवकों के साथ उन्होंने श्री चारभुजा नाथ के दर्शनार्थ मेवाड़ में स्थित गढ़ भोरनाथ की यात्रा की।

जोधपुर जाने का निश्चय- वहीं पर उन्होंने जोधपुर जाने का निर्णय लिया। धर्मपत्नी कुंवराणी गौड़जी को अपने विश्वस्त राजपूतों के साथ खरवा रवाना कर स्वयं अकेले घोड़े की पीठ पर मेवाड़ से मारवाड़ की राजधानी जोधपुर के लिए चल पड़े। उनकी यह साहसिक अश्व-यात्रा थी। चारभुजा से जोधपुर तक का यह अति लम्बा मार्ग उन्होंने केवल दो दिनों में ही पार कर लिया। पहले दिन चार भुजानाथ-गढभोर से प्रस्थान कर वे पाली पहुँचे। 90 मील का मार्ग एक दिन में पार किया तथा दूसरे दिन प्रात: पाली से चलकर सायंकाल वे जोधपुर पहुँच गये।

राजस्थान के राठौड़ों की जोधपुर पितृ भूमि है। बीकानेर, किशनगढ़, रतलाम, भिणाय, खरवा, मसूदा, पीसांगन आदि राज्यों और ठिकानों के शासकों के पुरखा जोधपुर राजघराने में ही जन्में भाई-बेटे थे, जिन्होंने अपने बाहुबल से इन अलग राज्यों की स्थापना की थी। जोधपुर के महाराजा को इन समस्त राठौड़ों के मुखिया होने का गौरव प्राप्त है। इसी हेतु इन सभी राठौड़ राज्यों एवं ठिकानों के असन्तुष्ट भाई बेटे हर काल और युग में जोधपुर जाकर वहाँ के महाराजाओं के पास आश्रय लेते रहे हैं।

जोधपुर में उस काल में महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय शासनारूढ़ थे। अपने समय के वे प्रसिद्ध शासक थे। उनके लघु भ्राता सर प्रतापसिंह रजवाड़ों एवं उच्च पदस्थ अंग्रेज अधिकारियों के मध्य अपने अनोखे और आकर्षक व्यक्तित्व के लिए प्रसिद्ध थे। वे 'सरकार' के विशिष्ट सम्बोधन से पुकारे जाते थे। वीरता, धीरता और निडरता में अद्वितीय सरकार प्रताप अश्व-संचालन एवं शस्त्र संचालन में भी अग्रणी थे। अंग्रेज परस्ती और स्वार्थ सिद्धि में भी वे बहुत चर्चित थे। उन समस्त गुणावगुणों का उनमें आश्चर्यजनक संमिश्रण था। अंग्रेजों को खुश रखना वे खूब जानते थे। अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में अंग्रेज अधिकारियों से बातें करके उनका मनोरंजन करने में वे चतुर थे। इतना होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती के वे अनुयायी एवं उनके सुधारवादी विचारों एवं सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक थे। उनकी अंग्रेज परस्ती तो वास्तव में दिखावा मात्र थी। खद्दर के कट्टर पक्षपाती और स्वयं खादी के बरदीधारी सरकार प्रताप ने राठौड़ रिसाले ''जोधा स्क्वेड्रन'' के सैनिकों की वर्दी मारवाड़ में बनी खादी से ही बनाए जाने का निर्देश दे रखा था। राज्य के दफ्तरों में कार्यरत अहलकारों के लिए भी मारवाड़ में बनी रोजी (खादी) से बनी पोशाकें (पजामा, अंगरखी और पाग) पहिन कर ही काम पर जाना अनिवार्य कर दिया गया था। यह वह समय था जब महात्मा गाँधी और उनके खादी युग का सूत्रपात भी नहीं हुआ था। महाराजा साहब भी अपने लघु भ्राता का लिहाज अधिक ही रखते थे। वास्तव में सर प्रताप अनोखे व्यक्तित्व के धनी थे।

पाल के ठाकुर रणजीतसिंह शोभावत महाराज के मरजीदान एवं शहर कोतवाल के विश्वस्त पद पर आसीन थे। अश्व संचालन में वे सुदक्ष थे। राजपूत प्रधान विचारों के धनी ठा. रणजीतसिंह कुं. गोपालसिंह के मित्र एवं प्रशंसक थे। दोनों ही सम विचारों के युवकों में घनिष्ठ मित्रता कायम हो चुकी थी। पाल ठाकुर जैसे और भी अनेक वीर-स्वभावी राजपूत महाराजा की सेवा में रहते थे। महाराजा को पहलवानी करने एवं पहलवान रखने का भी शौक था।

उनके वहाँ पहलवानों की पूरी जमायत रहती थी। महाराजा उदार हृदय, वीर और गुणग्राहक नरेश थे। उनमें राजा की सी गौरव गरिमा थी। उपर्युक्त क्षत्रियोचित गुणों से मंडित महाराजा ''नन्हीजान'' नामक एक गायिका के प्रेमपाश में आबद्ध थे। इसी कारण सर्व साधारण की चर्चा का विषय बने हुए थे। नन्हींजान महाराजा की पासवान थी, महाराजा पर उसका असाधारण प्रभाव था। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती के जोधपुर आगमन पर महाराजा ने आँखें बिछाकर उनका स्वागत किया। परन्तु उस विरक्त वीतराग सन्यासी ने ''शेरों के सिंहासन पर कुतिया का राज्य'' की फटकार लगाकर महाराजा के स्वागत की उपेक्षा कर दी। उन्होंने निर्भीकता से महाराजा को राजा के पद की गरिमा और कर्तव्य का बोध कराया। उस काल में जोधपुर के राज-दरबार में स्वामीजी के विचारों का प्रभाव छाया हुआ था। अधिकांश दरबारी, उमराव स्वामीजी के श्रद्धालु अनुयायी बन चुके थे। उमरदान जैसा मुंहफट चारण जो अब तक अनेक सम्प्रदायों के साधु-संतों का सत्संग करके उनकी रस भोगी लीलाएँ एवं कमजोरियाँ जान चुका था, स्वामीजी के आदर्शों से अनुप्राणित होकर कट्टर आर्य समाजी बन चुका था।

जोधपुर आगमन- जाधेपुर राज दरबार के प्रेरणादायी उपर्युक्त वातावरण के अन्तिम काल में खरवा के कुंवर गोपालसिंह ने प्रवेश किया (वि.सं. 1949)। महाराज ने उन्हें स्नेह और यथोचित आदर के साथ अपने पास रखा। वे उन्हें 'खरवा कुंवरजी' के आदर एवं स्नेह सूचक सम्बोधन से पुकारते थे। ऐसी चर्चा भी सुनी है कि महाराजा की इच्छा उन्हें एक जागीर प्रदान करने की थी, परन्तु उनके परामर्शदाताओं ने जिनमें 'सरकार' प्रताप मुख्य थे-यह तर्क देकर उन्हें ऐसा कदम उठाने से विमुख कर दिया कि गोपालसिंह खरवा के एकमात्र उत्तराधिकारी कुंवर हैं जो अपने पिता की मृत्यु-पश्चात खरवा के स्वामी बनेंगे। खरवा अंग्रेज शासित अजमेर प्रान्त का इस्तमरारी ठिकाना होने से जोधपुर राज्य से अलग है, अत: उन्हें जोधपुर राज्य में जागीर देना नीति-संगत नहीं है। **(क्रमश:)**

कलयुगी जीवन

- श्रीमती अंजना कुड़ी

यह जीवन यहाँ पल पल में ऐसे घटता जाए
कि जेसे कोरे घड़े से पानी टपकता जाए
हर ख्वाब यहाँ ऐसे टूटता जाए
कि जैसे कोई शीशमहल तड़कता जाए
दर्द यहाँ नित्य ऐसे बढ़ता जाए
कि जैसे सूखी घास में चिंगारी लगती जाए
हर इच्छा यहाँ ऐसे मरती जाए
कि जैसे गर्म तवे पर पड़ी पानी की बूंद उड़ जाए
हर निर्मल काया यहाँ ऐसे मैली होती जाए
कि जैसे चिमनी के धुंए से दीवार काली होती जाए
मगर फिर भी यह कलयुगी जीवन ऐसे चलता जाए
कि लगे कि शायद अगली सुबह कुछ अच्छी ही हो जाए।

अठै पधारो आप

– कमलसिंह सुल्ताना

(श्री क्षत्रिय युवक संघ में एक बूँद के रूप में शामिल होकर इस विशाल समुद्र का भाग बनने हेतु आमंत्रण)

जठै सुरगधर ही जचै, अपणायत अणमाप।
मन रीझै हद मोकळौ, अठै पधारो आप।।

पळकै नित री पाडियां, रूंख करे है जाप।
धरा धीर अर धरम री, अठै पधारो आप।।

मिळसी सांप्रत मावड़ी बैठो ने ही बाप।
सगळा साथी आवसी, अठै पधारो आप।।

अनुभव मिळसी ओपतो, जीव जायसी धाप।
जगत काटसी सब जड़ां, अठै पधारो आप।।

भ्रम मिटैला भौम रा, होसी तृष्णा साफ।
दीप प्रेम रा दीपसे, अठै पधारो आप।।

जुगां जुगां रो जीव औ, नभ नै लैसी नाप।
अपणी बात बतावसी, अठै पधारो आप।।

वीणा सूती वेदना, फट बढ़ जासी ताप।
कुळ रो राखण कायदो, अठै पधारो आप।।

जाचक री सैं जाचना, करुण रिदै सूं कांप।
सुपनां रो मन साधसी, अठै पधारो आप।।

प्रांगण पावन फूटरौ, करै कैक संताप।
पथिकां नै पौरावतो, अठै पधारो आप।।

मुरधर म्हारी मावड़ी, अपणी राग अलाप।
आंख्यां जोवै बाटड़ी, अठै पधारो आप।।

बोध–पाठ

एक महात्माजी किसी गाँव में गए। अनेक शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर 'आत्मा' पर लम्बा वक्तव्य दिया। एक युवक, जो अपने आपको बौद्धिक मानता था, बोला–महात्मन! आपने प्रवचन दिया, बड़ा श्रम किया, इसके लिये आपके प्रति हमारा आभार ज्ञापन। किन्तु बाबाजी! इतना सुनने के बाद भी आत्मा के अस्तित्व में मेरा कोई विश्वास नहीं है। मैं तो नास्तिक दर्शन चार्वाक को सही मानता हूँ, जिसका सिद्धान्त–जब तक जीओ, सुख से जीओ। वैषयिक सुखों का भोग करो क्योंकि शरीर के नष्ट हो जाने के बाद पुनर्जन्म जैसा कुछ नहीं है। जो कुछ है, इसी जीवन में है। फिर भी मेरा कोई आग्रह नहीं है। यदि आप मुझे आत्मा को हाथ में लेकर दिखा दें तो मैं मान लूंगा कि आत्मा भी कोई चीज है।

संत ने सोचा, इसे युक्ति से समझाना चाहिए। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा– युवक! तुमने कभी स्वप्न देखा है? युवक बोला–हाँ महाराजा! कल रात ही मैंने बड़ा सुन्दर स्वप्न देखा। लोकसभा का चुनाव हुआ और उसमें मैं जीत गया। मुझे प्रधानमंत्री बना दिया गया। 15 अगस्त का दिन आया। मैंने लाल किले से जनता को संबोधित किया। यह सब कुछ मैंने स्वप्न में देखा था।

संन्यासी ने कहा– युवक! मैं कैसे विश्वास करूँ कि तुमने स्वप्न देखा था। यदि स्वप्न को हाथ में लेकर दिखाओ तो मैं मान सकता हूँ कि तुमने सपना देखा था। युवक को कुछ न सूझा तो बोला–महात्मन! स्वप्न को तो नींद में ही देखा या भोगा जा सकता है। जब तुम स्वप्न को हाथ में लेकर नहीं दिखा सकते तो मैं अमूर्त आत्मा को हाथ में लेकर कैसे दिखा सकता हूँ। यह सुनते ही युवक को बोध–पाठ मिल गया।

अपनी बात

किसी भी साधना मार्ग पर चलने वालों को श्रद्धा बनाए रखने के लिए कहा जाता है। श्रद्धा यात्रा की निरन्तरता के लिए आवश्यक है। परन्तु यदि सन्देह छोड़ने और श्रद्धा करने को कहा जाता है तो यह सही मार्ग नहीं है। क्योंकि सन्देहों को मन में पाले रखें और समझ रहे हों कि सन्देह नहीं उठा रहा हूँ और श्रद्धापूर्वक पथ पर बढ रहा हूँ तो यह श्रद्धा नहीं होगी, यह तो लचर विश्वास मात्र है जो कभी भी टूट सकता है। इसीलिए संघ शंका-समाधान कार्यक्रमों के माध्यम से अपने प्रश्न पूछने के लिए जोर देकर कहता है। शंकाएँ या संदेह जितना हो, उसे प्रकट करना चाहिए। प्रश्न पूछें, खूब पूछें, जितना पूछ सकते हैं उतना पूछें। यात्रा के हर स्तर पर, जो भी छोटी-मोटी शंका उत्पन्न होती हो, जो भी संदेह पनपे उसका उत्तर खोजना ही सार्थक होगा। यह तब तक करना चाहिए, जब संदेह करना ही असम्भव हो जाए। संदेह स्वयं ही गिर जाए, संदेह कर-करके गिर जाए। अब संदेह को संभालने अर्थात बनाए रखने का कोई उपाय न रहे, कोई आधार न रहे। संदेह जब इस प्रकार मरता है, अपनी अति पर पहुँचकर, तो पीछे जो भाव शेष रह जाता है, उसका नाम श्रद्धा है।

श्रद्धा संदेह के विपरीत नहीं है। श्रद्धा संदेह का अभाव है। श्रद्धा तक वे ही पहुँचते हैं, जो संदेह उठाते रहते हैं, संदेह की यात्रा करते हैं। संदेह का अथवा शंका का मतलब है कि अपनी बुद्धि पूरी लगा दूंगा संघ को जानने में। जहाँ-जहाँ भी मुझे लगेगा कि कुछ ठीक नहीं लग रहा, वहाँ वहाँ कहूंगा ही कि कुछ ठीक नहीं लग रहा, संदेह उभर रहा है। उपनिषदों में ज्ञान का भण्डार है पर वहाँ भी कहा है-नेति-नेति। अर्थात् इतना ही नहीं। स्पष्ट है यही अन्तिम स्थिति नहीं है। इसलिए संघयात्रा में जांचना है, परखना है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहे। उस समय तक चलती रहे जब तक हम चाहे न चाहें पर हमारा प्राण कहे, कोई संदेह नहीं। हम न चाहें तो भी कहना पड़े, यह स्थिति आ जाए। हमने मार्ग को देख लिया, परख लिया। अब हमारी आत्मा साक्षी बन गई।

एडीसन नामक एक वैज्ञानिक हुआ है जो प्रयोग कर रहा था। तीन साल से लगातार प्रयोग चल रहा था पर सफलता नहीं मिली। उसके साथ कार्य करने वाले सभी लोग परिणाम न आने से थक चुके थे। सात सौ बार प्रयोग किए गये और सब असफल हो गए। मगर एडीसन बड़ा जिद्दी था। ऐसे जिद्दी लोग ही पहुँच पाते हैं लक्ष्य तक। वह रोज सुबह आता प्रयोगशाला में और फिर शुरू करता प्रयोग। तीन साल का समय, सात सौ प्रयोग और सभी असफल तो साथ कार्य करने वालों ने सोचा यही चलता रहा तो हम पागल हो जाएँगे। इसलिए हमें बात करनी चाहिए और उन्होंने एडीसन से कहा-आप हर सुबह उत्साह से भरे आते हैं और फिर प्रयोग शुरू कर देते हैं। तीन साल हो गए, सात सौ प्रयोग असफल हो गए, अब कब तक, क्या जीवन भर यही करते रहेंगे? कुछ और करें, इस प्रयोग में सफलता मिलने वाली नहीं है।

एडीसन उनकी बात सुनकर चौंका, जैसे किसी ने बड़ी बे बूझ बात कही हो। उसने कहा हम सात सौ बार असफल नहीं हुए, हम सफलता के निकट पहुँच रहे हैं। अगर हजार बार प्रयोग करने पर सफलता मिलने वाली हो तो अब तीन सौ ही बची हैं। जितनी-जितनी बातें गलत हो गई, उनसे हम सत्यता के करीब आ रहे हैं। यही नेति-नेति की प्रक्रिया है। संघ साधना में भी हम जितनी हमारी उभरी हुई शंकाओं का निराकरण करते जाएँगे, उतने ही सत्यता के निकट आते जाएँगे। सभी संदेह मिट जाएँगे और श्रद्धा ही शेष रहेगी।

शिविर- 18 से 20 जून, 2022 तक महाराणा प्रताप भवन, सेक्टर-8, फरीदाबाद में एक प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर होगा।

सम्पर्क - 9810067494 और 9650250458

वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप

जी की जयंती पर कोटि-कोटि नमन

चेतक पर चढ़ जिसने,
भाले से दुश्मन संघारे थे,
मातृ भूमि के खातिर,
जंगल में कई साल गुजारे थे।

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड
Spring Board

Springboard Academy,
Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda,
Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

जून सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 06

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह